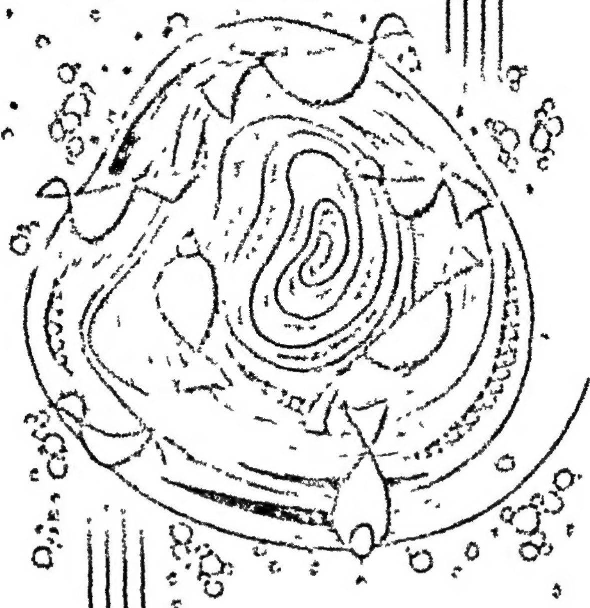
कबूतरखाना



शैलेश मटियानी



आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

KABŪTARKHANA

A Novel

by

Shailesh Matiyani

Rs. 2.50

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : रुपए

प्रथम संस्करण :

आवरण : ...कुमार लल्ला

मुद्रक



रमनई के

गमगार भाइ-बहिनों

कहनरों को

उपन्यास की कथा-वस्तु और
उसके पात्र कल्पना-प्रसूत हैं !

दो शब्द

'कबूतरखाना' बम्बई नगर की आत्मिक-पृष्ठभूमि से अनुप्राणित मेरा दूसरा उपन्यास है। बम्बई का एक प्रसिद्ध मोहल्ला भुलेश्वर—इसकी कथा-भूमि का केन्द्र है। यों भुलेश्वर बम्बई के कई और भी मोहल्लों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसे प्रतीक-रूप में देखा-परखा जाए।

इतना स्वीकार करते संकोच नहीं कि उपन्यास में मात्र दो वर्ग और प्रवृत्ति-विशेषों को ही रूपायित करने का प्रयास रहा है मेरा—बम्बई के समग्र जन-जीवन के चित्रण का नहीं। इसलिए, इस उपन्यास की प्रत्येक वस्तु सीमित है—कथा, भाषा और शैली, तीनों एक सीमित दायरे और परम्परा से सम्बद्ध हैं।

कथा गणपत के माध्यम से कही गई है इसलिए उसकी भाव-भूमि, कथा और भाषा-शैली गणपत की ही रहे, बिलकुल गणपत की जैसी ही औरों को लगे, ऐसी मेरी अपनी आकांक्षा रही है।

मैं ढाई-तीन वर्ष की अवधि तक, बम्बई की एक प्रसिद्ध चाट की दुकान में रहा। एक नौकर की हैसियत से, वहाँ के दूसरे नौकरों के संसर्ग-सम्पर्क में आया। इसके अलावा, सेठों के घरों में काम करने वाले घाटी लोगों का साथ भी बहुत मिला। सेठों के घरों में काम करने वाले घाटी लोगों को 'रामा' कहकर सम्बोधित किया जाता है।

ऐसे ही एक 'रामा' से उसकी आत्मकथा सुनी; उसी के मुख से, उसी की भाषा में—उसी के स्नेह-संवेदन-क्रोध-आक्रोश और दार्शनिक मनोभावों के साथ—और लोग भी सुनें—इसी उद्देश्य से, गणपत रामा को सबके सम्मुख अपनी कथा कहने को प्रस्तुत कर सका हूँ।

तो, अब आप स्वयं गणपत रामा की कथा सुनें......

और जहाँ तक मेरे द्वारा गणपत रामा के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है, यही कहूँगा, कि गणपत भाऊ के शब्दों में, 'जो आँखी से देखा, जो कानों से सुना—वोच बोलता !' की प्रवृत्ति मुझमें भी है ही......बस......

'कथा कैसी लगी ?' इसका उत्तर श्रोताओं से पा सकूं, तो अपने अन्तर्मन में प्रश्नवती आँखें लिए फिरते गणपत भाऊ को बतला सकूंगा, कि 'गणपत भाऊ, ऐसी लगी !'......

शैलेश मटियानी

कबूतरखाना

'कबूतरखाना' शैलेश मटियानी का दूसरा उपन्यास है। उनके पहले उपन्यास 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' प्रकाशित होते ही उपन्यास-साहित्य में एक कँपकँपी-सी व्याप्त हो गई। जितने मुंह, उतनी ही बातें! वास्तव में वह प्रत्येक पाठक के बौद्धिक, वैचारिक और आत्मिक धरातल को झकझोर देने वाला मर्मवेधी उपन्यास था। जो उसकी गहराई तक जाकर गोता लगा आया, उसका हृदय खिल उठा। वह सच्चे मन से शैलेश मटियानी का प्रशंसक बन गया और जिन्होंने किनारे पर रहकर ही मोती निकालने चाहे वे कोरे रह गए। उन्हें इस उपन्यास में सिर्फ बुराई दिखाई दी, अच्छाई कहीं नहीं। कुछ ऐसे भी थे जिनके मुंह में खारा पानी भर गया लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यह एक शक्तिशाली उपन्यास है। 'आजकल' ने लिखा कि यह उपन्यास भयंकर रूप से सेक्स भावना में परिलिप्त है और अन्त में कहा—"बोरीवली से बोरीबन्दर तक' में खूब अच्छी पकड़ है। शैलेश मटियानी की शैली भी प्रशंसनीय है और 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' एक शक्तिशाली और अंकनीय रचना है।"

'आदर्श' ने लिखा कि लेखक द्वारा जगह-जगह अश्लील वाक्यों का प्रयोग क्षम्य नहीं है। अन्त में यह भी स्वीकार किया कि शैलेश मटियानी की कलम में जोर है।

'विशाल भारत' की दृष्टि में उपन्यास का कथानक कमजोर है—किसी सामान्य हिन्दी पिक्चर के-से उतार-चढ़ाव वाला। राजकमल चौधरी ने भी 'ज्ञानोदय' के माध्यम से शैलेश मटियानी को सलाह दी कि अच्छा होता यदि वह इस उपन्यास को किसी फिल्म-निर्माता के पास ले जाते। (मानो जिस उपन्यास के कथानक पर अच्छी फिल्म बन सकती है, वह निम्नस्तरीय है, और इस श्रेणी में अब प्रेमचन्द का 'गोदान' भी आ गया है)

यह 'कबूतरखाना' उन पत्र-पत्रिकाओं की प्रशंसा का शुभ परिणाम है जिन्होंने लिखा कि आंचलिक उपन्यासों के लेखकों को इस उपन्यास से प्रेरणा लेनी चाहिए। बम्बई-जैसी महानगरी में पलनेवाले आवारा समाज का इतना जीवन्त और विश्वास्य चित्रण अब तक देखने को नहीं मिला। एक पत्र ने लिखा—"जिस समाज का चित्र वह खींचना चाहते हैं, वह कटुता और अश्लीलता के गहरे रंगों से ही उभर सकता है, इसलिए झिझकने-ठिठकने या दूसरों के पीछे छिपने की जरूरत नहीं।" एक दूसरे पत्र की दृष्टि में शैलेश मटियानी ने सधी हुई लेखनी और मंजी हुई भाषा द्वारा न केवल उपन्यास को ही सजीवता दी है अपितु उपन्यास-क्षेत्र को एक नई गति, नई दिशा दी है। उद्देश्य में लेखक बहुत ही सफल हुए हैं जिसके लिए समाज उनका ऋणी है, साहित्य-जगत आभारी है और वह स्वयं बधाई के पात्र हैं।

समालोचकों में इतना मतभेद है, हमें इस बात पर कोई एतराज नहीं, यह तो आलोचकों का प्रथम कर्तव्य (?) है। हमें एतराज है उन आलोचकों पर जिनकी नाक इतनी नाजुक हो गई है कि हर आधुनिक बात में से अश्लीलता और अनैतिकता की गंध पा लेते हैं या हर समय ऐसा चश्मा लगाए रहते हैं जिसका रंग काला है, जिसमें हर चीज काली दिखाई देती है।

'सैनिक समाचार' ने उन्हीं लोगों के लिए लिखा है—"अनेक स्थलों पर उपन्यासकार ने अपनी शैली में सत्य के, कटुसत्य के दर्शन कराए हैं। सम्भव है कुछ आदर्शवादी इसे अश्लीलता का रूप दें किन्तु सारे उपन्यास में अश्लीलता इतनी ही है जितना कि गरीबी और बेबसी को अश्लील कहा जा सकता है।"

'युगधर्म' ने भी यही कहा—"शैलेश मटियानी की भाषा कहीं-कहीं तीखी और स्पष्टवादिता लिए है कि साधारण पाठक कुछ बिचक जाता है पर यथार्थ को झुठलाना कोई अक्लमन्दी नहीं है। कड़वी दवा पीने से इनकार करने वाला रोगी, रोग की भयंकरता को न्योता देता है।"

'कबूतरखाना' उपन्यास के इन पृष्ठों में शैलेश मटियानी के प्रथम उपन्यास की वकालत हमारे लिए इसलिए आवश्यक हो गई कि 'कबूतरखाना' में भी ईमानदारी के साथ बम्बई के रौरव नरक का आवरण उठाकर पाठकों के

सम्मुख रख दिया गया है। बम्बई की रगों में पनप रहे अत्याचारों और शोषण के विषैले कीटाणुओं को देखने के लिए यह खुर्दबीन का काम देगा। रही अश्लीलता की बात, सो अश्लीलता का चित्रण यदि केवल मानव-मन को कामना, वासना और व्यभिचार की दिशा में ले जाने के लिए किया जाता है तो वह परिहार्य है, घातक है; पर सप्रयोजन किया गया यौन या काम-सम्बन्धी चित्रण सोचने-विचारने की एक स्वस्थ दिशा की ओर संकेत करता है।

'कबूतरखाना' एक पंख नोचे हुए कबूतर की अन्दरूनी तड़प और बाहरी गुटुरगूं की एक बोलती हुई तस्वीर है। बम्बई के सेठ-सेठानियों के कबूतरनुमा नौकर गणपत रामा की मुंहबोली दास्तान है और अन्तस को अकुला, मस्तिष्क को झकझोर देने वाली आपबीती अनुभूतियों का एक ढांचा है, जिसकी पसली-पसली आतशी शीशे का एक चटका हुआ टुकड़ा है और जिसका रेशा-रेशा एक रिसता हुआ नासूर !

हमें आशा है कि पाठक 'बोरीवली से बोरीबन्दर तक' के समान ही 'कबूतरखाना' भी अपनाएँगे।

एक

वो च बोलता[1]

नवरा…उक्…

मवाली…उक्…उक्

मिलेला…उक्…उक्…उक्…!!!

काय माझा नाँव ?…

गणपत…गणपत रामा…

सातारा वाला…

उक् !

जरा हटके…जरा बचके…ये है बॉम्बे…

काय, साला गजकरण ? आँखी में चश्मा लगाकूँ चलता क्या, रे ?… देसाई बाबू का बिटिया… वोच नटखट पोरी वसन्ती बाई का माफ़िक ? क्या, रे गजकरण ? वसन्ती बाई जिस तरहाँ से चार

१. वही कहता हूँ।

आँखी का तीर निशाने कूँ छोड़ता है, वोच माफ़िक तू भी चलाएँगा, क्या बेटा ?

हट् ट् ट् ट्…

जरा बाजूला हाँक…

पाँडुरँगा ची औलाद !

उक् ! !

पटेल ! बोल…क्या खिलाईंगा आज, रे ?

हमेरे कूँ क्या पूँछता बे ?

गाँठिया-पापड़ी खाईंगा तुमेरे गाँडा गुजराती लोग !

अपन साला घाटी-मराठी…

ऊसल-पाव…काँदा भजीया…सीरा-बटाटा वड़ा…सुकी भाजी, पातल भाजी का खानेवाला !

क्या, रे ? साला हलकट…ऐसा आँखी फाड़-फाड़ के क्या हमारा सूरत देखता ? अपने को कोई आँडू-पाँडू समझा क्या, रे ? अपन क्या घाटी-मराठी है ? साला डैमिश, हम भी तुमेरे माफ़िक गाँडा गुजराती है !

साला, तुमको अपना '…' का भी खबर नहीं…हमेरे को कहिंगा, आक्खा गुजरात का, आक्खा महाराष्ट्र का—आक्खा इंडिया का, आक्खा वरल्ड का हिस्टरी कबूतर का माफ़िक हग देंगा !

क्या, रे…म्हारी चूँदड़ीनो रंग गुलाबी…

हो, म्हारी चूँदड़ीनो रंग…

क्या, पोपट !—बोले तो, खोंचा दे दे—गरबा-रास तेरे कूँ बताएँगा ! क्या रे, बोले तो पेटी बजाएँगा, बोले तो तबला…क्या रे, इंग्लिश गाना-डान्स सुनेंगा ?… जरा हटके, जरा बचके… ये है

बॉम्बे मेरी जाँ !

टुरूरूरू…टुरू…रू…रू…

उक् !!!

पोपट, पैसा कैसा रे ?

साला हमेरे बाप कूँ भी कभी हम हाथ में मूत के नहीं दिया…

परण, पटेल साहिब, हवलदार कूँ काहे कूँ बुलाता, रे ? पैसा क्या कभी हम अपना बाप का भी रक्खा है, जो तुमेरा रक्खेंगा ?…

उक् !!!

क्या, हवलदार लोग साला '…' होता है !

खाली-पीली भी फुकट '…' लोग बाप का घर में ले के जाईंगा ! काहे कूँ लेके जाईंगा, रे ? दारू का वास्ते ?… साला, क्या हम दारू पिया है, रे ?…पिया है, तो क्या साला किसी का आई[1] को '…' के पैसा लाया क्या ?… दिन-भर सेठ लोग का घर में भाँडी घसता है… आक्खा दिवस सेठानी लोग कूँ मस्का लगाता है… आयखा दिवस कुतरा का माफ़िक पूँछ कूँ '…' से लगाता है…पीछूँ जाके साला पंधरा मिलता है !… साला, अपन घाटी-मराठी रामा लोग का भी कोई नौकरी है ? कोई जिन्दगी है ?…

अपन से तो साला मूनीसिपलटी का भंगी-चमार ज्यास्ती कमाता है ! उसका भी बाल-बच्चा होता है, बाई होता है ! कोई उसको 'बाप्पा' कहता है, कोई 'चाच्चा' कहता है… और उसकी बाई उसको …'देखो जी, सुनो जी' करके आवाज मारता है… उसका पोरी[2] … जालिम पर पुनवे[3] की चाँदनी-सा हुसन चढ़ा है ! कमर लचका के,

---

१. माँ। २. लड़की। ३. पूनम।

नीचे कूँ झुक के जभी झाड़ू देगी कबूतर··· हाए, पंछी !··· उसका जिसम··· उसका हुसन··· उसका जादू···

उक् !!!

हौलदार··· जमेदार··· इन्सपेटर···

ठोले[1] लोग की तो ऐसी की तैसी !

कोण सांला हमेरे को पीने से रोकता है ?···

उक् !

क्या हवलदार साहिब, आप भी क्या सितम करते ! आप हमेरे आई-बाप के सरीखा है ! हमेरा मालिक है··· अरे, हम बोलता ना, इस साला मुंबई में हवलदार लोग नहीं होईंगा, तो साला आक्खा मुंबई में मवाली लोग का शादी-महफ़िल होईंगा !··· क्या, हौलदार, अपन बाल-बच्चा लोग का शपथ खाके कहता है, आज तो हम '···' भर भी पियाच नहीं !··· क्या, आई शपथ, दारू पीना मूत पीना हम सरीखा च[2] समझता है !···

उक् !!

गेला··· गेला··· गेला···

साला हवलदार लोग—डैमिस का औलाद, '···' के पोंतरे '···' के '···' गाड़व !

दारू पिया हम ···?

कौन साला '···' का '···' पिया ?

पिया तो साला, किसी के आई-बाप का क्या पिया ?··· कासम भाई बोलता था—"हम दारू को, दारू हमारे गम को

---

१. पुलिस। २. 'च' का प्रयोग 'ही' के अर्थ में होता है।

सब इन्सानी जिन्दगी की कीमत है !"

उफ़्...!!!

सब ... आप ... क्या बोलता, मैं [illegible] की [illegible] भाई के [illegible] मैं न ख्याल कीजिए ! ... [illegible] न [illegible], अपनी आँखों के [illegible]—[illegible] मर्जी के [illegible] [illegible]— [illegible] लगती है ! [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible], [illegible] कुत्तावाला आदमी [illegible] [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible], [illegible] आप के [illegible]—[illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—" ... वो [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] मैं ... [illegible] [illegible] था...!

ये नाचीज लोग को भी अच्छी तरह ख्याल कीजिए ! ऐसा न सोचिएगा, ऐसा न लिखिएगा, ऐसा न बोलिएगा !

उफ़्...!!!!

वो, अपना [illegible] कुत्तावाला—आदमी खास !

वो किस्सा हमारा जौहर भाई सेठ के घर-सीढ़ी मुताबिक होगा। 'मुताबिक' समझते आप ? [illegible] उसकूं बोलते ! [illegible] का तरह में होना—[illegible] का पानी। ऊपर—पानी आग के पीछूं !

अपना सेठ जौहर भाई कूं भी नाचीज लोग उसका न गुनाहगार होना।

वो... क्या नाम होना उसका... गुन्न... वो अपना सेठ जौहर भाई का न शाहीर ! अपना सेठानी का न शाहीर ! बोपरा ऊपर च आयेला होता।

अपन कसम खाके बोलता। क्या, झूठ बोलना गू खाना बराबर समझिगा। अभी आप लोग को क्या बोले ? हमेरे आई-बाप का

सरीखा आप लोग होने से—जाड़ा-पतला बोलने कूं भारी पड़ता है। क्या अपन कोई मवाली भाई थोड़ी च है ? अपन भी आप लोग का च सरीखा शरीफ खानदान का नमूना है। साला घाटी-मराठी कोई और होईंगा—रामा साला कोई और···

अपना सेठ जवेर भाई···?
सेठानी नर्मदा बाई···?
शाहीर तुरन···?
बेबी कालिन्दी···?
वो शाहीर भारती व्यास···?
उक्···!!!!!

° ° °

शपथ आई का···
हमेरी आँखी से जो देखा,
हमेरे कान से जो सुना,
वो च बोलिंगा—

क्या, अपन गू नहीं खाता, अन्न खाता है। अन्न खाके, पोद्द झूठ बोलिंगा—ऐसा हलकट अपन नहीं है। पण, अपन कभी-कभ सोचता है, ये सेठ लोग, ये सेठानी लोग, ये शाहीर लोग···

अभी क्या बोले। एक-एक का पोल-पट्टी खोलिंगा, तो अपन को च केहने कूँ भारी पड़िंगा !··· पण, आज तो हम बोलिंगा च !

एक-एक का पोल-पट्टी खोलिंगा च !!
झूठ बोलना, गू खाना—एक सरीखा !!!
जो हमेरी आँखी से देखा,
जो हमेरे कान से सुना,
वो च बोलता—

ये लोग को क्या बोले ? 'वो च हगता, वो च खाता' वाला गोष्टी है ! भारती व्यास वो दारू-बन्दी का मुशायरे में आया होता। उधर वो शायरी पढ़ता होता। शायरी म्हणजे—कविता। उसकी शायरी का मतलब होता—

जो लोग शराब पीता, वो हलकट होता। शराब पीनेवाला अपना माँ-बहन का खून पीता, ऐसा च वह बोला। बोला, नशा दो किसम का होता है—एक मोहब्बत का, एक दारू का—मोहब्बत के नशे में आदमी अपना देश के लिए, अपनी माँ-बहिन का वास्ते कुरबानी करता—

और दारू का नशा—पी के शराबी कीचड़ का गटर में गिरता, तो कुत्तरा मुँह पर पेशाब करता—

सुननेवाला लोग, उसका शायरी पर ये जोर-जोर से ताली पीटता होता—वाह वा ! वाह वा ! वाह वा !

अपना जोड़ीदार बाबू भाई भी 'वाह वा' करके, ताली देता होता। हम उसको एक लप्पड़ दिया—"क्या साला, पाँडू ! हिजड़ा लोग का माफ़िक क्या ता-थैया करता, रे ? ये भारती व्यास—जो च हगता, वो च खाता !"

बाबू बोला—"तुम पिया है, तुमेरा मगज़ फिर गयेला है !"

सच बोले, तो उस दिन हम पियेला च होता। पीछू गायकवाड़ हौलदार हमेरे कूं पकड़कर ले गया, तो हम रास्ते में च कह दिया था—"हाँ, हाँ—पिया है। पण, अपना कमाई का पिया है—क्या, किसी साले का माँ-बहन को '....' के पैसा थोड़ी लाया है !"

गायकवाड़ हमेरे को एक लाफा दिया—

हम सोचता रहा, साला हम सच बोल दिया, तो लाफा खाया; ऊपर से आक्खी रात-भर 'लॉकप' में अलग सड़ेगा—उधर वो शाहीर भारती व्यास लड्डू-समोसा उड़ाऐंगा !···

वा रे कुदरत ! वा तेरा इन्साफ़ !

अरे, क्या इस भारती व्यास का एक-एक पोल-पट्टी हमेरे से पूछो। क्या, अपन इसका-सरीखा कितना पोपट का मिट्ठू-मिट्ठू सुन चुका है। गया दोन बरस का बात है। हम रागू दादा के यहाँ दर रोज का पगार पर होता। कालीना-सांताक्रूज से चर्चगेट—फोन्टेन—कोलाबा तक माल सप्लाई करता होता। तभी विलेपारले और सान्ताक्रूज का स्टेशन पर भारती व्यास का वास्ते हम दर रोज एक बाटली कड़क दारू आईसक्रीम के ठेलेवाले नत्थू नजोरा को दे जाता होता। नत्थू नजोरा बोलता—"गरणपत भाऊ, वो व्यास बाबू ऐसी-ऐसी बेहतरीन नज्में लिखता है—'गोरे-गोरे हाथों में'···मगर, मय की मस्ती के बिना—तौबा, तौबा !···"

अपन सोचता है, जो शाहीर दारू पिए बिना एक लावनी परण नहीं लिख सकता, वो च शराब को माँ-बहन का खून बताता ? वो च कहता, शराबी का मुँह में कुतरा पेशाब करता ?—कैसा झूठ बोलके गू खाता ये लोग !

अपन जो करता, वो च बोल देता !

अभी हमेरे सेठ की हिस्टरी पूछो हमेरे से···

बताईंगा, बताईंगा, जरा सबूर करो।

अपन पहला वो ठिकाणी का हिस्टरी बोलेगा, जिस ठिकाणी आक्खा दो बरस, कबूतर का पाँखी का माफ़िक, हमेरी आँखी के सामने च फुर्र करके उड़ गया !

तीन

भुलेश्वर

भुलेश्वर मुंबई का जिगर है !

जिगर के बारे में सभी जानते हैं—सारे जिसम में, कांग्रेस के सिक्के में विलैंत के राजा की फोटो की तरह, दिल-च-दिल है—एक ऐसी जगह, जो सारे जिसम का 'ट्रामफाटा' है; हिंदुस्तान के जिसम पर दिल्ली के जंकशन-सा; ताँबे के तारों में बिजली के कनकसन-सा। गिरजों में घंटों की टनाटन-सा, पुजारी के माथे पर त्रिपुण्ड-चन्दन-सा—अभी और क्या हम दिल के बारे में जाड़ा-पतला बोले ?

कासम भाई बोलता था—"दिल—अरमानों का डेरा है !"

जभी उसके अरमानों का कनस्तर बजाके वो चमेली गोलपीठा पर जाके बैठ गई, तभी हमेरे को बटाटा बड़ा के माफ़िक हँसा फूटा ! कासम बोला था—"जालिम जान देती थी, यार, मेरे ऊपर—पर बीच बजार में बनारसी जूता मार के चली गई !"

हम बोला—"तेरी चमेली की चोली में चमारों का टोना-टटका जोर मार रहा है। तू तो गाधला है—चमेली तो न-जाने अभी कितनों के सिर में चमेली लगाएगी !"

कासम भाई बोला—"यार भाऊ, मेरा दिल…"

उसका बात काटके, हम बोला—"पोंतरे, 'दिल-दिल' को क्या अभी तेल लगाएगा ? अरे, आजकल का पंछी लोग तो दिल का दलिया बना के छोड़ देता है !"

वो बोला—"औरत की जात बड़ा बेवफ़ा होता है !"

हम बोला—"बेवफ़ा क्या, अच्छा-अच्छा लोग का तबला बजाके रख देता है ये लोग ! औरत की जात का…"

हम कोई मनहूस गाली देने को होता, कि हमको अपनी माँ की याद हो आई, बहन की याद हो आई…जभी हम अपना सातारा में होता—क्या, तभी हमेरे को हैजा हो गया होता। कै करते-करते आक्खा हड्डी-हड्डी नरम पड़ गया होता। गाँव का लोग हमेरे से घिन करता होता। कोई पण नजीक नहीं आता होता। हमेरी हालत पानी से भी पतली होता—बिस्तर पर ही गू-मूत छोड़ता होता। क्या, हमेरे दिल में आया हमेरी जिंदगी अब पंक्चर होने को। कोई भी हमेरे को एक घूंट पानी नहीं पिलाने को—

पण, अभी अपना आई को क्या बोले !

हमको कलेजे से लगाकर रखती होती।

हमेरी बहन मेरा गंदा बिस्तर साफ करती, कापड़ धोती।

हमेरे वास्ते माँ अपनी आक्खी जिंदगी खतम कर दिया—हमेरे लिए हमारी बहन की आक्खी जिंदगी बर्बाद हो गया—

तभी हम सोचता है—औरत से बढ़कर सखी और कौन होईगा

दुनिया में ? उसका पाँव धोके भी पिए, तो विट्ठल-पांडुरँग भगवान् का प्रसाद पाएका माफ़िक !

बाबू भाई बोलता होता—"जो बीमारी औरत से अच्छा नहीं हुआ, उसे हकीम लुकमान भी अच्छा नहीं कर सकता।"

हम बोला—"जिसको माँ-बहन सुखी नहीं कर सकता, उसे पांडुरँग भी सिकेली भाखरी, टुटेला लाड़ नहीं दे सकते !"

° ° °

लेकिन अपन चमेली-सरीखी मैना को क्या बोले ?

कासम भाई को ठेंगा भी पता नहीं, यार !

वो तो आक्खी जिंदगी-भर पोपट-का-पोपट ही रह गया ! कुरान का कसम खाके सच बोलिंगा, तो क्या बाबा जी का '...' काज़ी बनेगा ? हमेरे को भी वह अपनाच-सरीखा पांडू समझता होता। केहता होता—"यार, गरणपत भाऊ, चमेली की चालबाजी तुम-जैसा सयाना ही समझ सकता है !"

हम उसको बोला—"अरे, यार, अपन उड़ता पंछी का पाँखी गिनता है ! क्या, बाई लोग को पत्ता दिखाने में, आई शपथ, हमेरा जवाब नहीं।"

पण, मन-ही-मन बोला—"दोस्त, अपन क्या चमेली की खुशब्रू लेंगा, वो तो खुद हमेरे जिगर को चूना-कत्था लगाके चालू पड़ गयेली है !"

अभी, क्या, कासम भाई को क्या '...' खबर है—जभी चमेली उसकी आँखी पर चश्मा डाल के भिंडी बजार से टिकट कटाया था, तभी उस पर पेहला-पेहला कम्बल अपनच डाला था ! पण, हमेरे घोंसले में भी बिना अंडा छोड़े ही, दाना-चारा चुगकर, वह ज़ालिम

मैना फुर्र हो गई !...

मगर, दोस्त किसी से—कासम भाई से केहना नहीं ! वो यार समझेगा, हम दोस्ती में नींबू डाला है। और अपन को तो, यार, आक्खी मुंबई जानता है—दोस्ती में खटाई डालना, गू खाना—हम बरोबरच समझता है !...

तभी हम क्या बोला था, जभी हम पटेल के होटल के आगल, भोईवाड़े के नाके ऊपर खड़ा होता ?...बाई ग-ग-ग...हत्त तेरे '...' की, साला दिमाग में भी वरली के गटर का पानी भर गया है !—हम बोला था, भुलेश्वर मुंबई का जिगर है !...

अरे, बाहर से क्या घंटा मालूम पड़िगा ?

कासम भाई कहता था, "जिगर का खून हथेली पर नज़र नहीं आता !"

कसम से, कासम भाई भी कभी एकच नक्की बात करता है।

कोई अभी हमेरे को बोले—अंदर का पोल-पट्टी, क्या, कभी बाहर नज़र पड़ेगा ? भुलेश्वर कईसा[1]-क्या है—हमेरे से पूछो हमेरे कान से सुनो, हमेरी आँखी से देखो !...

कईसे फ़ूल-माला के अंदर देवी के चरणों पर मोहब्बत के पैगाम रक्खे जाते—कैसे-कईसे सेठ लोग का दीकरीओ[2] भोईवाड़े से भुलेश्वर तक आते-आते चौपाटी-मलाबार हिल घूमने के लिए काम चलाऊ खसम ढूंढ लेते—क्या, कईसे-कैसे सेठ का घर से खजूर छाप दस्ती सरकते—हमेरे से पूछो !

हमेरे से—रामा गणपत से पूछो, क्या—सेठ लोग का घर

---

१. कैसा। २. लड़कियाँ।

जितना ही भाँडी घिसा होगा, उतना ही सेठानी लोग की बदौलत मज़ा भी मारा होगा !

तभीच हम बोलता है—मुंबई के अच्छे-अच्छे खानदानों के पेट अन्दर का नक्शा देखने का होगा, तो भाँडी घसनेवाले रामा लोग से पूछो, बँगलों में रहनेवालों की हिस्टरी पूछो, गुरखा-पठान वाचमेन लोग से, कार का ड्राइवर लोग से !

सफेदपोशों के काले कारनामे को कोई क्या बोले ?

सफेद कुर्ता-धोती पहनते सभी लोग, पण दिल काले तखत के सभी के नहीं होते ! क्या ! अपन भूठ नहीं बोलिगा—भुलेश्वर में सैंकड़ों आदमी अच्छा भी होईगा—सभी के बारे में क्या बोले ?…

लेकिन बोलिंगा—आज हम रँगत में है—मजे में है—किस्सा बोलिगा एक-एक—मिर्ची के भजीया-सरीखा टेसदार—

शुरू करिंगा किधर से ?

सूरज किधर से फूटता ?

हम किधर से आया ?

सातारा किधर—मुंबई किधर ?

उक्…उक्…उक्…

क्या लाला, इधर का गटर बास मारता है—

बास—हो-ओ-हो !…बास की बात पर अपनी सेठानी वसुन्धरा बाई का नाम याद आया। अभी किस्सा वसुन्धरा बाई से शुरु—

बोलो, गरणपत बुआ—

जो-कुछ बोलिगा—विट्ठल-पांडुरँग को साक्षी रखकेच बोलिगा !

विट्ठल-पांडुरँगा की शपथ…

अरे, विट्ठल तो आला-आला मला भेटण्याला—काय टेसदार

लावनी है—

कभी हम पण ऐसेन्च भेटने को आया होता—

उक्…उक्…उक्…

अभी अपन को नींद डंडी मार रियेली[1] है !

अंटी में फकत चार आना है !

अभी सोईंगा—सबेरे मस्का-ब्रून खाईंगा—

अभी सोईंगा—

ऐसेच, इधरच सोईंगा—कौन साला बोलता इधर गटर है ?… अरे, पोपट-पोंतरे, ये तो बादशाह जहाँगीर का तख्ते-ताऊस है—अपना सेठ जवेर भाई का मुलायम गद्दी है—अपनी सेठानी वसुन्धरा वाई का मस्का का माफ़िक मुलायम, गुलाब का माफ़िक खुशबूदार जिसम है—

एक-एक ख्वाब ऐसा आईंगा—

एक-एक किस्सा फिलम का माफ़िक आँखी-आगे, पिंजरा का कबूतर-माफ़िक, आईंगा—आओ, बेगम !

जादूगर सैंया—छोड़ो मेरी बैंयाँ—

आओ बेगम, अभी सुबू को ही तुमेरा मजा छोड़िंगा—

उक्…!

बेगम…!!

उक्…!!!

बाई…!!!!

रात चैताची झाते—

---

१. रही

वाई···ग···ग···ग···ग···ग···

उक्···!!!!!

० ० ०

पंद्रह रुपए का मनीआर्डर था।

गणपत ने आठ बार कलम उठाकर चार अक्षर लिखे। पूछा—"गंगानी कुठे सही केली आहे, मास्तर ?"[१]

फिर देर तक बुझी-बुझी आँखों से—'दसखत करणार आणि पैसे घेणार 'गंगाबाई'[२]—को देखता रहा ! एक-एक अक्षर में उसे गंगा की मासूम आकृति दिख रही थी—'गंगाबाई'; उसने कहा, और आँखों पर हाथ रख लिए। मास्टर ने कहा—"तुमचा पत्र पण आहे।"

गणपत ने चिट्ठी खोली—

लिखा था—

"भैया,

"तुम्हारे चरण छूती हूँ। तुम्हारा पत्र मिला। जानकर कि तुम्हारी हालत सुधर रही है—खुशी हुई। पंद्रह रुपए भेज रही हूँ; अब शायद और न भेज सकूँ। नौकरी छूट रही है।

लौ मंद है, तूफ़ान करीब है।

काश, कि तुम्हें देख पाती।

भगवान् विट्ठल तुम्हें सुखी रक्खें।

"तुम्हारी अभागिन—गंगा !"

---

१. गंगा ने किधर हस्ताक्षर किए हैं, मास्टर। २. हस्ताक्षर करनेवाली और रुपए लेनेवाली, गंगाबाई।

जब भादों की घटा घिरी थी—

तब माँ चली गई। गणपत को लगा, बादलों के उस पार कहीं ऐसी जगह, जहाँ हैजे की दवा मिल सके—गणपत के लिए। शायद, वहाँ वाले पूछें, हैजा क्या होता है ? बिना देखे, दवा कैसे मिलेगी ? इसलिए गणपत की माँ हैजे को अपने साथ, नमूने के तौर पर, ले गई थी !···

क्वाँर की एक कुमारी-संध्या को—

गंगा लमथरे की पगडंडी पर पुच्छल तारे-सी चलती रही। आज तक गणपत की पुतलियों में उसकी वही सूरत टिमटिमा रही है। पटेल का भानजा कहता था, पिछली चार-पाँच रातें उसने पटेल मामा के यहाँ गुजारी हैं—गणपत के मन में प्रश्न उठा था, तो क्या इस तरह भी औरत अपने भाई को जिंदगी बख्शती है ?

गंगा चली गई थी, तो जैसे यह प्रश्न भी लमथरे की पगडंडी में विलीन हो गया।

डेढ़ महीने बाद, गंगा की बम्बई से चिट्ठी आई थी, कि वह अपनी आँखों से गणपत को तड़पते, दम तोड़ते कैसे देखती ? बम्बई में वह कुशल से है। एक बँगले में नौकरी लग गई है—पहली आते ही, कुछ रुपए मनीआर्डर से भेज देगी।

तब से हर महीने दस-पंद्रह आते रहे।

गंगा की चिट्ठी भी आती रही—'सुख से हूँ, अपनी सेहत का ख्याल रखना।'

इस चिट्ठी से लगता था, आखिरी है। गणपत अब कुछ स्वस्थ हो चला था। पंद्रह रुपए मुट्ठी में पड़े थे। मन में बहन के लिए प्यार भी था—चल पड़ा बम्बई को।

गंगा के पते को उसने ट्रेन में कई बार पढ़ा—

गंगा बाई···

चार

कमाठीपुरा तेरहवीं गली पहुँचने पर, गणपत को किसी साहब का बँगला न मिला।

मुंबई शहर की महामाया देखकर, वह पहले ही भौंचक्का था। कमाठीपुरा की गलियाँ देखीं तो लगा—स्वर्ग होते-होते नरक के द्वार पर आ खड़ा हुआ है।

कमाठीपुरे की एक-एक गली का किस्सा कहने के लिए पच्चीस वैताल चाहिएँ—फिर कमाठीपुरे में तो चौदह—शायद इससे भी अधिक—गलियां हैं !

तेरहवीं गली के कोने वाले मोड़ पर, गणपत को बेगम-विला मिला। एक-दो की जगह, हर तरफ बेगमें-ही-बेगमें देखकर, गणपत की नजरें आड़ी-तिरछी हुई जा रही थीं। ठीक उसी तरह, जिस तरह बेगम-विला के रहमानी रेस्तरां की कोने में बैठे गोरखपुरी पान-

वाला भैया की मूँछें—कत्थे-चूने की डंडी के साथ ऊपर-नीचे उठती हैं, दाँए-बांए झूलती हैं।

एक पान पूना मसाला लेते हुए, गणपत ने भैया जी से पूछा—"इकड़े गंगा बाई कुठ राहतीत ?"

जबाव, बगल में खड़ी, मोटी घरवाली[1] कृष्णाबाई ने दिया—"कुटची गंगाबाई, रे ? सातारा वाली काय ?"

"हा, बाई ! तो च।" गणपत का मुख पुलकित हो उठा।

"कायग, त्याची गोष्ट काय विचारतो तूं ? एक महिन्या पासून तोंडावर इत्र-फुलेल आणि '—' मिहंदी लावून बसलेली आहे !"[2] और कृष्णाबाई पान की पीक 'पिच्च' थूकते हुए, ऊपर सीढ़ियों की ओर वढ़ गई।

गणपत बादशाह की 'ट्रेल' के नीचे गुलाम तक के 'फ्लैश-सा' दबा रह गया। लगा, कानों में किसी हलवाई ने जलेबी का ताजा, गरम बखर उड़ेल दिया है। बाँसों के झुरमुट में गिलहरी-सी—एक कँपकँपी-सी उसके मन-वन के भावना-बाँस-वृक्षों में सरक गई—गंगा बाई !

गणपत चेतना-शून्य-सा खड़ा ही था, कि भैया जी ने पूछा—"गंगाबाई तुम्हारी क्या लगती थी ?"

प्रश्न से गणपत की अंतरात्मा काँप-सी उठी !

एक वेश्या को वह बहन कैसे कहे ?

क्षण-भर के लिए गंगा की वेश्यावृत्ति का घृणित जीवन, एक

---

१. वेश्याओं की मालकिन। २. अरे, उसके बारे में क्या पूछता है ? एक महीने से मुँह में इत्र-फुलेल और '—' में मेंहदी रचाए बैठी है।

विराट वीभत्स स्वप्न-सा, गरणपत की आँखों में छा गया—उसने जमीन पर जोर से थूक दिया।

भैया जी ने कहा—"इस पूरे बँगले में अस्सी-बयासी रांडें रहती हैं—पर गंगाबाई-जैसी मैंने कोई नहीं देखी। और जितनी भी हैं सब मुझसे मजाक करती हैं। कोई 'क्या, भैया जी, हमारी '—' में चूना-कत्था कभी लगाएगा?' तो कोई 'भैया जी, तुम्हारी सुपारी हमने बहुत खाई, हमारा पान तुम कभी खाओगे?' कोई 'भैया जी, पटकती लेगा, नटकती?' कहती है—पर, गंगाबाई—वह मुझे 'चाचा जी' कहती रही है।"

भैया जी का मन भारी हो आया था—एक बार कत्थे की लुटिया को चूने की डंडी से जोर से हिलाकर उन्होंने मूंछों पर कतरी सुपारी की एक कतरी अटकाली—"तुम्हारी क्या लगती है वो? गज़ब की लड़की है। हर महीने पंद्रह-बीस रुपए घर को भेजती थी। मनीआर्डर मैं ही भरता था—कहती थी, 'माँ के लिए भेजती हूँ'... बेचारी कैसे कहे, कि 'भाई के लिए भेजती हूँ'...."

और एक तीखी दृष्टि गरणपत के मुँह पर गड़ाकर, भैया जी बोले—"औरत, आखिर औरत होती है!"

गरणपत के मुँह पर जूते पड़ते, तो शायद इतनी व्यथा, इतनी ग्लानि न होती उसे। भैया जी की ओर देखने का साहस वह न बटोर सका, बोला—"गंगा मेरे ही लिए पैसे भेजती थी। मुझे गाँव में हैज़ा हो गया था।"

भैया जी बोले—"गंगा बेचारी एक महीने से गर्मी की बीमारी से तड़प रही है। वैसे भी औसत से ज्यादा ग्राहक पास लेने से उसका जिस्म टूट गया है। कली की तरह चटकने के दिन थे उसके, यानी फूल-

सी भड़ी जा रही है…"

गरणपत खामोश सुने जा रहा था—वह सोच रहा था, नारी को इतना महान् भी क्यों बनाया भगवान ने, कि पुरुष कभी भी उसके प्यार से उऋण न हो सके !

पुरुष जब गिरता है—चांडाल बन जाता है।

नारी जब गिरती है—देवी।

—क्योंकि पुरुष 'पुरु' हजार बार बनके भी, 'पार्वती' कभी न बन सका—न बन सकेगा !

० ० ०

कौन साला बूम[1] मारता है ?

बूम किसका माफ़िक—?

वसुन्धरा बाई का…? नहीं, नहीं—जभी उसका साथ पेहले-पेहले सोया था, तभी वो बूम नहीं मारता था—सिसकारी भरता था !…जवेर भाई के साथ सोईंगा, तो खाली करवट बदलता है।

देवी कालिन्दी को अभी क्या बोले—

पेहला फसल हमींच काटा था, पेहला दाना हमींच बोया था !—

सबूर करो, सुबू होने दो—

एक-एक का हिस्टरी बोलिंगा, क्या !

साला बूम कौन मारता, रे ? हमेरा ख्वाब टूट गया—

परण, ख्वाब में हम क्या देखा था ?…

हट बे, कुतरे,[2] परे हट…

---

१. गप्प २. कुत्ते।

क्या, साला कृष्णाबाई का माफ़िक…

गंगी…

बाई ग…

गंगी…बहिरण—

० ० ०

गणपत बेगम-विला की पहली सीढ़ी चढ़ा ही था, कि कृष्णाबाई की चीख सुनाई पड़ी—"हाय रे, दैवा ! काय करूँ मी आतां ?…ओ, भैया जी—ओ रे दगड़ू !…ओ, रे सखाराम !…ओ, घिथरी बाई…!"

गणपत ठिठक-सा गया।

कृष्णाबाई की चीख-चिल्लाहट सुनकर अड़ौस-पड़ौस के भड़ुए, होटलों के वेटर सभी ऊपर को दौड़ पड़े—पीछे-पीछे गणपत भी दूसरी मंजिल पर जा पहुँचा—सामने गंगा की लाश पड़ी थी।

अपने ही हाथों से फाँस मारकर, उसने अपने जीवन का अन्त कर लिया था। शायद, इसलिए कि, एक वेश्या के रूप में भाई से नजर मिलाने की ग्लानि से, मृत्यु को ही श्रेयस्कर समझा हो उसने ?

कृष्णाबाई बोली—"खिड़की के ऊपर से इसको देखा था इसने। मैंने घड़ी-भर देखती ही रही थी। मैं समझी थी, कोई ग्राहक है। मैंने कहा कि '—' में तो मेंहदी रचा के बैठी है, बाप को कैसे लेगी ?…मैं क्या जानूं, यह इसका कौन लड़िया है ?…क्या, भैया जी, इसका खसम तो नहीं है यह ?"

"यह तो भाई है इसका।" भैया जी ने कहा।

कृष्णाबाई को जैसे उबाल आ गया—"क्या रे, भाई होकर बहन की '—' की कमाई खाता था ! अरे, दैवा, इस पोरी ने तो

कभी अपनी '—' को भी ढक्कन नहीं रखा !...कमा-कमा के भाई के पेट में भरती रही ! अरे, दैवा—बोल, भैया जी...बोल रे, सखाराम !...बोलो, ईरानी सेठ—अब मैं कहाँ से इसकी मय्यत के लिए कफ़न-कुर्ता लाऊँ ?"

भैया जी ने देखा, गणपत मरे से भी बदहालत हो गया है। बोले—"कृष्णाबाई, चीखना-चिल्लाना पीछे; ज्यादा नखरे करेगी, तो तेरी ही '—' में कत्था-चूना लग जाएगा। कफ़न-कुर्ते के नाम पर रो रही है, पुलिस-केस हो जाएगा, लफड़े में पड़ जाएगी... '—' मुख, दोनों तरफ़ की कमाई मसाले में चली जाएगी !"

कृष्णाबाई की जबान में जैसे किसी ने गुड़ रख दिया हो। बोली—

"क्या बातें करते हो, भैया जी !...अरे, मैं तो अपनी सभी पोरी लोग को बिटिया के सरीखी समझती हूँ। क्या, आखिर इन्हीं की कमाई का मैं भी खाती हूँ—कितना भी लगेगा, इन्कार थोड़े ही है !"

उस साँझ—

बम्बई का सूरज गणपत के आँसुओं में डूबा था !

पाँच

कोण है ? रशीदा, क्या ?

क्या बाई ग-ग···कासम भाई बोलता था––"शराब गम को, गम जिन्दगी को पीता है !"···अपन मरेंगा कईसे ? गम जिन्दगी को कईसे पिएँगा ? हम साला गम को पिएँगा !···

पैसा खीसे में नहीं––

झूठ बोलनेवाले की बहन की···

खामूस, साला, बहन का वास्ते गाली का लफज जुबान पर भी लाना नहीं ! क्या, नहीं तो साला तुमेरी अक्खी मुँबई का माँ-बहन को···

क्या साला हमेरी जबान को भी '—' लग गया है—जो नहीं बोलने का, वोच हाथों के '—' सरीखा पेहले मुँह पर आता है !···

चुप बे !···

रोता कौन है ? हम ? क्या, हमेरी आँख में आँसू ?

गधी की '—' से कभी हिना निकलती क्या ?

आँसू नहीं क्या—ये तो हम दारू पिया था, गटर में पड़ा था, कुतरा साला मुँह पर मूत गया !

रशीदा, यार भाऊ, थोड़ी-सी पिलादे—प्यारे ! पैसा क्या अभी अपने बाप का भी हम रखा है, जो अभी रखेगा ? क्या, यकीन न होए, तो—ले साला हमेरी गंजो गिरवो रख ले—ले, उतार देवे क्या ?…

ला, फिर ला, प्यारे—तेरा भी दिल दरिया, जिसम समन्दर है, यार !…पानी तो मिक्स नहीं किया ?…क्या, प्यारे, दोस्ती में पतला नहीं मूतना !…

उक्…!

उक्…!!

पिल हाऊस का ट्रामफाटा किधर कूं रेह गया—?

रॉयल में क्या लगेला है—'नागिन !'

क्या, फिलमिस्तानी लोगों ने भी इंसानियत को डँसने के वास्ते एक-से-एक वढ़के जहरीली नागिनों को पाला-पोसा है…

कभी-कभी अपन सोचता है, 'गरीबों की माँ-वहन के खून की लाली होंठों पर लगाए, गरीबों की माँ-वहन की अस्मत का पाउडर मुँह पर पोते ये पिशाचनें जब सड़कों पर निकलती हैं—सिनेमा-घर से—तभी माँ के '…' सभी इनकी '—' में मुँह डालने को कुतरे के माफिक दौड़ते हैं।

कोण—?

सलाम ! सलाम दादा !…

उक्…!!!

क्या, अपन इस दादा का आक्खी जिन्दगी-भर शुक्रगुजार रहेगा। जभी हम मुम्बई में गधे की पूँछ के माफिक लटकता होता, तभी येच दादा हमेरी जिन्दगानी को सहारा देके, सही-सलामत रखा…

क्या रागू दादा—खुश रहो प्यारे।

तुमेरी बेगम को '—' का माफिक ख़ूबसूरत '—' मिले!

रागू दादा सुन तो नहीं लिया?

सुन भी लेंगा, तो अपना क्या उखाड़ेंगा?

उक्!

कोरा—?…भागीरथी…?

उक्…!!!!

घाबरती काहे को, बाई? अपन आज करिंगा कुछ नहीं—क्या, खाली लगाकर दो घड़ी सो जाईंगा।—अरे, इधर कूं काहे कूं सरकती, बाई?—अपन कोई ग़ैर थोड़े है? रागू दादा से पूछ लेना कल को—क्या!—अच्छा सबूर, जरा धोती हमेरे ऊपर भी डाल दे—

उक्…!!!!!

छः

पूस की रात भी चैत की रात से लम्बी होती है—जब पेट-भर खाना, चोंच-भर दाना नसीब नहीं होता।

गणपत सोचता, कि मां गई, लौटकर न आई !

गंगा गई, लौटकर न आई !

तब ये रातें ही क्यों लौट-लौटकर आती हैं ? ये रातें—जिनमें नीचे बिस्तर, ऊपर चादर—बगल में औरत नहीं !

न बिस्तर, न चादर, न औरत—

और न रोटी !

कभी-कभी ऐसा लगता है, एक सिर्फ रोटी मिलती रहे—और कुछ भी नहीं, तो कोई हर्ज नहीं। पर, जब भी पेट-भर रोटी उपलब्ध हो जाती है—औरत की जरूरत महसूस होने लगती है कि काश यह माँ के प्यार-भरे हाथों से होते हुए हम तक पहुँचती !—

को पानी गरम करता—और रात को बरामदे में शतरंजी डालकर, चदरा ओढ़े सो जाता। उसकी आँखों में रात को पिलहाउस की रंगीनी ही छाई रहती—वह चाहता, काश कि वह भी, और नौकरों की तरह, वहीं सो पाता !

गणपत की सेठानी बड़ी बदसूरत थी—उसके ऊपर के तीन दाँत बाहर को निकले हुए थे—रात को तीन बार उठकर वह पेशाबघर जाती थी, और तीन ही टाईम उनका रसोइया 'भैया' भी कम्बल उघाड़ लेता था ···

° ° °

काय बाई···

उक्···! धोती काहे कूँ उघाड़ दिया—कसम से, भागीरथी बाई, ऐसेच वो हमारा पारसी सेठानी भी एक दिन हमारा चदरा उघाड़ दिया था। वो 'भैया' था ना, क्या, वो अपने घर गया था—बनारस। क्या, लोग क्या बोलते, बनारस के लोग बड़े रसिया होते !···आक्खी जिन्दगी का रस ऊस[1] का रस का माफिक निचोड़ देते। उक्···!

तो क्या, हम बोलता था···रागू दादा भी एकच···पण, हम तो अपना सेठानी का बात कर रिया था—एक बात बोलेगा, झूठ बोलना, गू खाना हमेरे लिए बरोबरच है—क्या, सेठानी हमेरे को तर माल खिलाता था। ये-ये घी से तर आमलेट खाकूं तो हमेरे मुँह पर सुरैया का जैसा हुशन-जवानी चढ़ आया था···एक महीना का पीछूं, जब कभी हम दुकान के ऊपर जाता—होटल का छोकरा

१. ईख।

लोग बोलते, "घर का खूराक लग गया है।"

कोई कहेता—"सेठ लोग के घर में माल ही ऐसा मिलता है—पर, पीछे यह माल सेठ की बीबी ही वापस ले लेती है।"

कोई कहता—"अरे यार, तुम पूरे बम्बई के रामा लोग को देख लो, सबकी हड्डी ही बाहर दिखेगी—कुछ सेठानी चूस लेती है, कुछ सेठानी की छोकरियाँ—अंग्रेज मेमों के कुत्तों और बम्बई की सेठानियों के रामा लोग में कोई फर्क नहीं है।"

वहींच अपना कासम भाई, आर्डर ऊपर होता—वो कहता—"यार, गरगपत बुआ, जिसम तो तुम्हारा सफरचंद-सरीखा[1] हो गया है। पर, दोस्त, सच-सच बताना—मैं तुम्हारा दोस्त हूँ—सेठानी तुम पर हाथ तो नहीं फेरती है?"

हम पाँडुरंग की शपथ खाके बोल दिया, कि अभी तक सेठानी हमेरी आई (माँ) सरीखी है। वो अपना बच्चा का माफिक हमेरे को पालती है।

पण, हमेरे को क्या पता था—सेठानी बच्चे पर ही मक्खन-वाला हाथ फिराएगी···

···कायग, बाई···हाथ ऐसेच रहने दे, करेगा कुछ नहीं हम। घाबर मत—घाबर मत बोले तो···

वो दिवस तो हम भी ऐसाच घाबर गया था, जभी सेठानी हमेरा कम्बल उघाड़ दिया। हम पूछा—"क्या काम है, बाई?"

वो होंठों पे अँगुली रख दिया—सी-ई-ई-ई···!

और हमेरी बगल में लेट गया।

---

१. सेव-जैसा।

हमेरी समझ में नहीं आया, काहेकूं सेठानी इतना नरम बिस्तर और सेठ को छोड़कर—इधर, हमेरी बगल से चिटकता है ? हम सोचता होता, कि सेठ लोग के घर में भी कैसा-कईसा पोलपट्टी चलता है, कि उसने हमेरे गाल पर अपना तीन-का-तीन दाँत चिटका दिया—

उक्...!

हम तो, सच्ची बोलता है, घाबर गया—सेठानी का जिसम भी क्या बोले ! उसका एक-एक छाती बीस-बीस रतल का होगा, दो हाथ से थामे तो भी दबाने को नहीं होवे—हम तो घाबर के भाग गया—तभी हम शर्माता भी होता, सेठानी तो एकदम नंगाच हमेरे पास आया था !

बाईग, एक बात बोले क्या ?

उक्...!

सच्ची बोले, तो अगर सेठानी की जगह—सेठानी का वो चश्मा-वाली छोकरी ऐसे रात को नंगा हमेरे पास सोने का आया होता, तो बिलकुल भी नहीं घाबरता—हम उसकूं अपने जिसम से जोर से चिटका लेता...

कायग, अभी हम तुमेरे को जोर से दबा दिया तो 'उई-उई' काहे को करती, बाई ? तुमेरे को भी तो अच्छा लगता होईगा ? कासम भाई बोलता था—"मर्द के साथ सोने से औरत को जन्नत से भी ज्यादा मजा मिलता है, पर वह हमेशा यही जाहिर करने की कोशिश करती है, जैसे वह सिर्फ मर्द का खातिर सब-कुछ झेल रही हो।"

...बाई लोग का दिलच ऐसा होता है !

अकेले तुमेरे को क्या बोले ?

अच्छा, बाई, थोड़ो देरमेंच सुब्ह हो जाएगा—अभी ठंडो भी ज्यास्तीच लगा हमेरे को, तुमेरी धोती का गठन[1] खोल देवे तो तुम '—' तो नहीं मारिंगा ?…नहीं क्या…सच्ची भागीरथी बाई, तुमेरे को भी पाँडुरंग ने एकच दिल दिया है…

अच्छा, जरा हमेरी बाजू को सरक जाओ…

जरा इधर कूँ मुँह कर लो…

उफ्…!!!

सात

उस दिन के बाद फिर उस पारसी सेठ के होटल में गणपत नहीं गया। तनख्वाह उसे उसी दिन सवेरे मिली थी। रात को वह रामभरोसे होटल के पाटिए पर सोया रहा। सवेरे वहाँ से उठकर चौपाटी की तरफ घूमने चल दिया। घूमते-घूमते मलाबार हिल की तरफ गया और वहीं बगीचे की एक बैंच पर सो गया।

जितनी देर आँख खुली रही, वह यही सोचता रहा कि जीने के लिए क्या किया जाए? उसके मन में यही खयाल उठता—'अपन आजाद पंछी का माफिक रहे तो?'

आजाद पंछी की तरह रहने से उसका मतलब था, कोई ऐसी नौकरी करना जहाँ समय का—किसी और प्रकार का बंधन न हो। एक छोकरा बगीचे में 'चम्पी!...चम्पी मालिश!...' करता फिर रहा था। गणपत ने उसे करीब बुला लिया।

छोकरा जब सिर पर हाथ फिराने लग गया, तो गणपत ने पूछा—"कितना पैसा लेता है, रे ?"

"चार आने भी, आठ आने भी—रुपया भी—जैसे किसम की जितनी देर की मालिश होवे !"—छोकरा बोला।

"एक रुपए वाली मालिश कैसी होती है, रे ?"

"तुम बुरा तो नहीं मानेगा ?"—छोकरा बोला।

"नहीं, रे !"

"एक रुपया वाली मालिश रात को होती है—सेठ लोग की। घर में औरत से मालिश कराने को ये लोग डरते हैं, क्योंकि औरत उन्हीं पर चढ़ बैठती है और इनसे कुछ बनता नहीं। इसलिए ये लोग इधर बगीचों में हमसे मालिश कराते हैं—और घर पर नौकर लोग सेठानियों के साथ सोते हैं !"

"ऐसा क्या, रे ?"

"नहीं तो क्या,"—छोकरा तेल छपछपाते हुए बोला—"गरीबों के लड़कों की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है ?....ईमानदारी से रोटी कमाने के रास्तों पर पत्थर रख दिए गए हैं। मेहनत-मजदूरी करने पर सूखी रोटी भी पेट-भर मयस्सर नहीं होती... '—' मराके मक्खन-रोटी मिलती है !"

छोकरा चला गया, तो गणपत ने यह निश्चय कर लिया, कि वह भी 'चम्पी मालिश' का धंधा करेगा। छोकरा तो अब वह रह नहीं गया यों ! अट्ठारह से ऊपर हो चली है—अब क्या कोई उस पर हाथ फिराएगा—दाढ़ी-मूँछ फूट गई है।

साँझ को बगीचे से फिर चौपाटी की ओर चला आया गणपत। रॉक्सी में 'शमशीर' लगी थी—पोस्टर देख के गणपत का मन

ललचा गया । बम्बई आके उसने एक ही पिक्चर पिलहाउस के 'ताज' में देखी थी—अंग्रेजी पिक्चर—'सैमसन डिलायला'—उसमें दिखाए चुम्बनों के दृश्य उसके कलेजे में एक स्थायी गुदगुदी छोड़ गए थे।

'शमशीर' देखकर, बाहर निकला तो उसकी आँखों में भानुमती ही तैर रही थी——उस मछली की तरह, जो दिखाई देती है, पर हाथ नहीं आती। गणपत सोच रहा था, कि काश, वह भी अशोक कुमार की तरह उसे अपनी बाँहों में भर पाता ? उसे ताज्जुब था, कि अशोककुमार ने उसे इतनी बार बाँहों में भरकर भी चूमा नहीं था !···वह सोचता, मैं होता तो ठीक सैमसन की माफिक इंग्लिश स्टाइल से चूमता।

उसने निश्चय कर लिया, कि पिक्चर में पिक्चर तो अंग्रेजी—नौकरी में नौकरी तो पिलहाउस और कमाठीपुरा में, जहाँ बर्तन भी घिसने पड़ें, तो हूरों की महफ़िल आँखों के आगे हो।

रास्ते में उसे कासम भाई मिल गया। बोला—"क्यों, गणपत बुआ, नौकरी काहे को छोड़ दी ?"

"ऐसेच," गणपत बोला।

" 'ऐसेच' क्या···अरे, गणपत भाई, मुझको भी इसी बम्बई में मूँछ के बाल जमे हैं।"—कासम हंस दिया—"घर की नौकरी होती है ऐसी। गरीबों के लड़कों के लिए हर जगह गड्ढे हैं, दोस्त। जूठे बर्तन भी घिसो दिन-भर, फिर रात को सेठों की बीवियों को भी सँभालो—बीमार पड़के मर जाओ, तो कुत्ता भी सूंघने को नहीं भेजेगा कोई !"

"अभी किधर कूँ जा रहे, कासम भाई ?"—गणपत ने पूछा।

"मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक।"—क़ासम हँस दिया—"चमेली के यहाँ जा रहा हूँ। चलेगा? पर, तू तो ब्रह्मचारी है, बुआ। तेरे साथ चलके अपनी दाल फीकी कौन करे? अच्छा, कल मिलना, क्या, मुझसे होटल में आकर!...सलाम!"

"सलाम!" गरापत बोला। सोचा, आज उसकी जेब में भी तो पैसे हैं। फिर क्यों न वह भी आज की रात किसी औरत के साथ बिताए। औरत के साथ सोने की हविश को वह एक मुद्दत से सीने में दबाए रहा है। आज वह दबा शोला भड़क उठा है—क्योंकि 'चाँदी' से ज्यादा दहकनेवाला अंगारा ईश्वर ने और कोई नहीं बनाया।

फिर औरत के साथ सोने की हविश—एक सनातन हविश है। बचपन में भी कोई पिता के पास सोना पसन्द नहीं करता। औरतें प्रसावेनी और प्रशयिनी—दोनों हैं। वात्सल्य देती हैं, माँ बनकर—कल्पनातीत रति-सुख देती हैं, 'उर्वशी' बनकर—फिर वह चाहे घर में पत्नी हो, या कोठे पर वेश्या—वह उर्वशी तो है ही—पुरुष की हर भूख को तृप्त करना उसका कार्य हो चला हैं, रहा है—तभी न जिस स्तन से दूध पिलाकर वह पलती है, उसी पर हाथ फिराकर काम-सुख प्राप्त करते पुरुष को वह रोकती नहीं—

औरत हर अवस्था में माँ है—माँ रहेगी!

पुरुष तो शिशु भी है और शैतान भी!

० ० ०

जब कनाडी ब्रिज से गरापत गुजरा, तो पवनपुल की खिड़कियों के पर्दे उठे हुए थे। सारंगियाँ बज रही थीं, तबले गमक रहे थे—और मुजरे हो रहे थे।

गणपत ने सोचा, गाना भी सुनेगा—और रात को गानेवाली के पास ही सो भी जाएगा। कोठे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, पैर ठिठके तो सही—पर गणपत ने दिल मजबूत कर लिया। अन्दर का दृश्य देखकर उसकी आँखें चुंधिया गईं। मसनदों के सहारे बाबू लोग बैठे हैं, पान चबाए, सिगरेट दबाए और गानेवाली ठुमक के जभी पास आती है, तभी नोट हाथ में ले लेते हैं—गानेवाली जब नोट लेने आगे बढ़ती है, उसे चूमकर नोट हाथ में थमा देते हैं।

गणपत को खयाल आया, अंग्रेजी पिक्चर देखने से भी ज्यादा बढ़िया तो यहाँ आना है। पर, वह सोच नहीं पा रहा था, कि पुरुष तो यहाँ दस-ग्यारह इकट्ठे हुए हैं, गानेवालियाँ हैं दो ही—इतने सब किसके साथ सोएँगे ?

पर, तभी गाना खत्म हुआ और करीब-करीब सभी उठके दूसरे कमरों की ओर चल दिए। केवल एक आदमी रह गया और गणपत। गानेवाली ने आँखों से इशारा किया—गणपत मंत्र-मुग्ध-सा बैठ गया। तभी एक-दो सुननेवाले और आ गए।

गानेवाली ने साजिन्दों की ओर इशारा किया और उसकी कमर लचक गई—'हवा में उड़ता जाए…!'

'मेरा लाल दुपट्टा मलमल का'—की टेक पर वह, सुननेवाले के सिर पर अपनी ओढ़नी रख देती और सुननेवाला इसी पर्दे में उसे चूम लेता—नोट थमा देता। गणपत की भी पारी आई। चूंदरी सिर पर पड़ते ही गणपत को ऐसा लगा, जैसे कोहकाफ की किसी परी ने अपने रेशमी नैनों में उसे छुपा लिया हो। उसने गानेवाली को कसके छाती से चिपका लिया और सैमसन से भी ज्यादा कसकर उसके होंठों को चूमने लगा—साजिन्दा, घरवाली, सभी सुननेवाले

भी ज्यादा घाव हो गया। अँगुली का तो नस ही कट गया। पीछूँ उसके बाप ने हमकूँ मार-मार के हमारा दम खुसक कर दिया— सुबू को नाली पर ही हमेरी आँख उघड़ी थी !…उक् !!

उक्…उक्…!!!

रागू दादा का एहसान अपन आक्खी जिन्दगी-भर नहीं भूलेगा।

मार से हमेरा आक्खा जिसम काँदा भजीया[1] का माफिक हो गया होता। उस दिन खीसे से भी कड़का होता। हाथ दोनों जखमी होते—अपन सोचा, अभी बे-मौत मरेगा। जभी साला कमाया था—तभी माँ लोग का '—' में भर दिया—अभी साला हमेरा बुरा टैम आया, तो कोई हाथ में दवा के लिए मूत भी नहीं देगा। सोचता था, दुनिया में औरतच नहीं होना माँगता है—कासम भाई की चमेली, हमेरी सेठानी—वो पवनपुल पे गाणी गानेवाली और कुलसुम का माफिक हलकट—औरत होवे तो हमेरी गंगा-जैसी होवे…हमेरी माँ जैसी होवे—

क्या अपन भी कितना बदनसीब है !

कभी-कभी अपनी जिन्दगी के बारे में सोचे तो आँखी से खून निकलता। हमेरी तो साली आक्खी जिन्दगी का ही डिब्बा बज गया—क्या, कईसे-कईसे अरमान होते—पण, गरीबी ने सभी का बत्ती गुल कर दिया…

उक्…!!!!

पण सईदन का माफिक बाई लोग तो होनाच माँगता है। उसको हम बख्शीश का पावली भी नहीं देता होता। एक रुपया

---

१. प्याज की पकौड़ी।

देके दो घंटा उसका पास बैठता होता—दो दफे भी बैठे तो मने नहीं करती होती—अभी उसकी मेहरबानी का वास्ते क्या-क्या बोले !

जभी उसको खबर लग गया, कि हमेरा चम्पी बन गयेला है, बिस्तरे वर पड़ेला गुड़ खाता है, तो सईदन हमेरी पास आया—राग़ू दादा के घर में। इन्सान को भी क्या बोले, राग़ू दादा हमारे साथ लाख नेकी किया—पर उसका बुराई भी हम आक्खी जिन्दगी-भर नहीं भूलेगा। सईदन को उसने बोल दिया—"मेरे साथ एक-एक टैम सोया करेगी, तो गरणपत के पास आने दूँगा, नहीं तो…"

सईदन का दिल भी एकच दिल। बोली—"गरणपत के पास जाने के वास्ते, एक क्या—एक हजार टैम की शर्त भी कोई रखेगा, तो जब तक जिसम है, उसमें जाली नहीं चढ़ाऊँगी।"

हमेरी आँखी में दर्द से तभी आँसू आ जाता होता—इस मुसलमान छोकरी ने माँ-वहन का माफिक, इतना बड़ा दिल किधर पाया होइंगा ? परण, बोले तो क्या मुसलमान, क्या ईसाई—क्या पंजाबी—औरत का दिल आखिर औरत काच दिल है—परण एक-एक औरत तो डायन-सरीखी भी होतीच है।

हमेरे शरीर में जान नहीं होता। परण, सईदन हमेरे से चिटक-चिटक के जैसे बिजली भर देती होती। हम सोचता, औरत हर हालत में मर्द को ताकत देती है—और हम उस कमजोरी की हालत में भी सईदन से प्यार-मोहब्बत कर लेता होता।

सईदन की गाँठ का खाके, उसके साथ हम खूब मजा लिया—जितना कोई भी अपनी बीबी से ले सकता। क्या, हम सईदन का एहसान आक्खी जिन्दगी-भर नहीं भूलेंगा…

अपन तो हमेशच बदनशीब रहा । क्या—माँ हमेरे को प्यार करती होती, चली गई—बहन प्यार करती होती, वो पण चली गई—सईदन हमेरे को प्यार करती होती—वो पण…

अभी, रोईंगा नहीं तो क्या करेगा ? आखिर हम भी तो इंसान है ? हमेरे भी अरमान है—हम सोचता था, अच्छा हो जाईंगा, तो सईदन से लगन कर कूँ, आक्खी जिन्दगी ईमानदारी से बिताएगा। मेहनत-मजदूरी करेगा, पण सईदन को राँड नहीं रहने देगा। पण, इस मुँबई को—इस राज को क्या बोले—जहाँ हमेरी जिन्दगी का पाटियाच आउट हो गया !

सईदन हमेरे वास्ते आठ-आठ आने में भी ग्राहीक सँभाल लेती होती—आखिर को बीमारी में सड़के खुदा को प्यारी हो गई…

हम सोचता है, गंगा और सईदन—दोनों खुदा के यहाँ एकच कमरे में होंगे—गंगा भी शरीर-जिसम को काँड़ी लगाके हमेरी जिन्दगी को रोशनी देती थी—और सईदन ने भी अपना हाड़-माँस बेचकर हमेरे को जिन्दगी बख्शी—

ऐसी माँ-बहन लोग का कदम-नी चूँका मिट्टी भी माथे से लगाए तो पाँडुरंग देवा के प्रसाद सरीखा है !…

उक्…!!!!!

सईदन के अवसान पर, गणपत उतने ही आँसू रोया, जितने गंगा के अवसान पर। उसके पास पाप-पुण्य की परिभाषा नहीं थी। सभ्यता के उस माप-दण्ड पर उसकी जिन्दगी कभी नहीं तुली थी, जिसमें अपनी बहन-बेटी को सोने-चाँदी से मढ़ने के लिए पूँजीपति लोग औरों की बहन-बेटियों का रक्त पीते हैं।

तिलक-चन्दन धारण करने वाले, बड़े-बड़े मन्दिरों का निर्माण करवानेवाले इन सेठों से कोई पूछे—प्याज-लहसुन से तक परहेज करनेवाले ये, अहिंसा के नाती-पोते ये—हजारों सीता-सावित्रियों का माँस कैसे खा लेते हैं? हजारों माँ-बहिनों का रक्त कैसे पी जाते हैं? हजारों-लाखों भाइयों के कलेजे कैसे चीर कर चबा लेते हैं?

ये शाकाहारी पूँजीपति—

रावण-कुंभकर्ण-कंस के इन वंशधरों को कोई क्या कहे? रंडियाँ

जिन्हें कहते हैं ये—उनसे कहीं ज्यादा बेशरम हैं ये । रंडियों में बेबसी की बेशरमी होती है—मगर ये तो बेहया होते हैं, बेईमान होते हैं—पैसा—पैसा—पैसा—

केवल पैसा इनका ईमान है !
केवल पैसा इनका धर्म है !!
केवल पैसा इनका ईश्वर है !!!

ग्यारह

दिन बीतते गए।

गरणपत रागू दादा की कम्पनी में भर्ती होकर, शांताक्रूज—कुरला—अंधेरी—कालीना से दारू की बोतलें लाने लगा शहर में।

दिन-भर में दो ट्रिप भी कर लेता तो पाँ-चछः रुपए बन जाते। चार-पाँच महोने में ही दो-ढाई सौ रुपए उसने जमा कर लिए। एक दिन उसका मन हुआ, पवनपुल पर जाए—उसी गानेवाली के यहाँ चाहे पचास ले, चाहे सौ—पर, रात-भर उसके जिसम से खेले जरूर। उसी ने कहा था—"पवनपुल की हीरोइनों के साथ सोने को हाथ-भर का कलेजा चाहिए!"

पाँच-पाँच के पूरे बीस नोट लेकर, गरणपत साँझ को पवनपुल चला गया। उसी कमरे में गया—पर वह गानेवाली वहाँ नहीं थी। एक बार चारों ओर नजर डालकर गरणपत लौट गया। पर,

दरवाजे पर पहुँचते ही उसके मुंह से आश्चर्य की एक हलकी-सी चीख निकल गई--वही गानेवाली उसके सामने खड़ी थी !

पर, वह खूबसूरती, वह तेज मिजाजी—वे इशारे--सब न-जाने कहाँ चले गए थे। हड्डियों का एक ढांचा था, जिस पर सांसों की बिजली ज्यों-त्यों सरसरा रही थी । गणपत से न बना, कि सीधे चले जाए।

वह बोली—"नहीं पहचाना, बाबू ?..." और वह आगे सरक-कर, एक छोटी-सी कोठड़ी के किवाड़ों के सहारे खड़ी हो गई। उसके कण्ठ-स्वर में इतना दर्द था, कि गणपत से न रहा गया। पास पहुँचा—"पहचान तो लिया था !" फिर उसका सोया अहम् जाग उठा—"पचास रुपए की बात जल्दी कैसे भूलेगा, कि पवनपुल की हिरोइनों को '—' के लिए हाथ-भर का कलेजा चाहिए !"

वह आँखें फाड़कर देखती रह गई। फिर रो पड़ी—"आप नहीं मेरा बुरा वक्त बोल रहा है, बाबू !...खैर, उस दिन दो मिनट चूमने के १३ रुपए दे गए थे—आज दो घंटे तक चूम लो, दवा को तेरह आने ही दे देना !...मुंह अभी बदसूरत तो नहीं हुआ है न ? जिसम में जरा भी ताकत नहीं रही कि ग्राहक की मस्ती झेल सकूँ—फिर भी अभी अँधेरी गली में जाके एक रुपए में..."

और वह धाड़ मारकर रो पड़ी। उसका शरीर काँपने लगा—और वह किवाड़ों के सहारे-सहारे ही जमीन पर बैठ गई।

गणपत उसे देखता ही रहा—क्या यह संभव नहीं, कि इसने भी गंगा की तरह अपने किसी भाई को जिन्दगी देने के लिए—अपनी जिन्दगी कुरबान की हो ?...क्या यह संभव नहीं कि सईदन की तरह और किसी के लिए बलिदान का पशु बनी हो ?

गरणपत बोला—"कब से बीमार हो, बाई ?"

"तीन महीने से।"—वह बोली—"नाचने से जो पैसा मिलता था, उसमें से बहुत थोड़ा मुझे मिलता था—घरवाली और भड़वे सारा पैसा हजम कर जाते थे। उधर मुलक में बाप बीमार था—माँ बीमार थी—छोटे भाई-बहन थे—कौन उनकी परवरिश करता ?...इंसान को शैतान कभी नहीं जीत सकता।" तवायफ हूँ, पर डायन नहीं। माँ-बाप भाई-बहन का प्यार मेरी जिन्दगी का भी सकून है—"

वह रुकी, मैली धोती से आँसू पोंछे।

गरणपत खामोश ही रहा।

वह बोली—"नाचने के पैसों से गुजर होनी मुश्किल थी, पूरे परिवार की। इसलिए चुपके से गलियों में उतरकर दोपहर को घूमने के बहाने होटलों में जाने लगी—बाबू लोगों के साथ। बाबू लोगों ने नोट के बण्डलों के साथ-साथ बीमारियों का बण्डल भी दिया—मैं कहीं की न रही। गर्मी हो गई। अब न नाच सकूं, न ग्राहकों को जिसम ही दे सकूँ—घरवाली ने निकाल दिया। तब से इस कोठरी में पड़ी हूँ—दवा के पैसे कहाँ से आएँ, पेट को रोटी नहीं जुटा पा रही—आज बड़ी मुश्किल से नीचे उतरी थी—एक ग्राहक बड़ी मुश्किल से मिला। एक रुपया दिया उसने—एक-एक हड्डी अलग करके चला गया। सब मेरे पाप का फल है। उस विचारे को भी तो अब गर्मी हो जाएगी ?...मजबूरी भी कितने बड़े गुनाह करवाती है !!..."

गरणपत बोला—"बड़े जुलम की बात है—अचरज की बात है—! इतने यार लोग तुम्हारे—भँवरा के माफिक तुमेरे ऊपर

डोलता होता, रस चूस के चला गया, तो सूरत भी नहीं दिखाता कोई ?…क्या, बाई, तुमेरी हिस्टरी बड़ी पुरदर्द है ! क्या—हमेराच माफिक !…तुमेरे को कोई मदत नहीं करता ?"

सहानुभूति पाकर, उसका स्वर सबल हो उठा—"मदद ? मजबूरों की मदद तो भगवान् भी नहीं करता—इंसान क्या करेगा ? कभी मेरे इशारों पर नोट बँटते थे, आज आठ-बारा आने को भी कोई मेरा भाव नहीं पूछता ! जिस्म खरीदकर पैसा देनेवाले बहुत हैं, पर एक मजबूर लड़की को अपनी बहन-सा मानकर एक रोटी देना भी किसी को कबूल नहीं ! बहन के नाम पर, सुना था, लोग बड़ी-बड़ी कुरबानियाँ कर गए हैं—पर, अब तो जैसे बहन के प्यार की कीमत ही नहीं रही ।…किसी को 'भाई' कहती हूँ, तो थूकता है मुझ पर—'कल तक मुझी से '—' रही, अभी बाप काहे को बनाती है !…'……"

गरणपत को लगा—यह नहीं, गंगा बोल रही है—सईदन बोल रही है—हिंदुस्तान की हर मजबूर, दुखियारी बहन बोल रही है—

गरणपत ने उसे बाँहों में भर लिया—

चूम लिया—

माथे के सूखे-बिखरे केशों को ।

० ० ०

कमला गरणपत के लिए गंगा हो गई । गंगा की पवित्र धारा में स्नान करने से वही मन पवित्र होता है, जो पवित्रता की कामना लिए डुबकी लगाता है । जो हजार पाप लिए डुबकी लगाए, उसका मन क्या पवित्र हो ?…

बहन का प्यार भी भागीरथी का निर्मल जल है—कोई उस

प्यार को आस्था के साथ अपनी स्नेहांजलि में ले—'नमो भगिनि:' कह सके तो।…

गणपत ने कमला का इलाज करवाना शुरू कर दिया था। सारे पैसे लाके उसने कमला को दे दिए थे। कमला स्वस्थ हो रही थी——गणपत दारू की बोतलें सप्लाई करते हुए भी पुण्य-लाभ कर रहा था।

और एक दिन कमला ने कहा—"भैया, तुम्हारे उपकार जीवन-भर न भूलूंगी।"——और उसने गणपत के चरणों में आँसुओं का अर्ध्य चढ़ा दिया—गणपत को लगा था, शिव के तो जटा में समाई थीं गंगा, पर उसके चरणों में समा गई हैं!…

कुछ दिनों के बाद कमला ने बताया, कि उसका मन माँ-बाप से मिलने को, भाई-बहन से मिलने को छटपटाता है। गणपत को उसके विछोह की कल्पना-मात्र से वेदना होने लगी, पर आखिर उसने कमला को स्टेशन तक स्वयं पहुँचा दिया—

उस दिन,
गणपत को लगा,
स्वर्ग से एक गंगा आई थी, अब तक बह रही है—
मेरे जीवन में——
दो गंगाएँ बहीं—
पर, रही एक भी नहीं!
कितना बदनसीब हूँ मैं!

बारह

एक बार फिर गणपत की जिन्दगी बिना शाक की रोटी-सी बन गई; बिना रुनझुन के घुंघरू-सा मन जब भी खनका—रुला-रुला गया।

कासम ने उसे गम की दवा चखाई—

और सचमुच वह दवा गणपत की इंसानियत को चट कर गई। अब उसके दिल में यही हविश बनी रहती—सोने को औरत हो, खाने को बिरयानी—और देखने को अंग्रेजी पिक्चर!

दारू के धंधे में बार-बार पकड़े जाने का खतरा था। फिर महीनों जेल में सड़ना पड़ता, पुलिस मारती सो अलग—आखिर गणपत ने निश्चय किया, किसी सेठ के घर में नौकरी करेगा। बर्तन घिसने पड़ेंगे तो क्या हुआ, तर खाना, मुलायम बिछौना तो मिलेगा?…

उसने सुना था, सेठानियाँ ज्यादातर भुलेश्वर के पासवाले मंदिर में पूजा के लिए आती हैं; उनमें जो सेठानी रामा चाहती है, मन-पसन्द मिल जाने पर साथ ले जाती है।

अब गरणपत सिर में चकाचक तेल डालता। हर दिन दाढ़ी बनाता, गले के बटन खुले रखता, कि छाती के घने-काले बाल दिखाई देते रहे। कोई सेठानी कभी उसे देखती यदा-कदा, तो बाँई आँख दबा देता। पर, उसके इस सिगनल के 'डाउन' होने से—कोई भी 'ट्रेन' उसकी जिन्दगी की पटरी पर नहीं रुकी थी !

पर, कह रखा है—जहाँ चाह, वहाँ राह !

एक दिन—

चौपाटी के सागर में सूर्य स्नान कर रहा था—

तब—

गरणपत के भाग्य का सूर्योदय हुआ।

भुलेश्वर के नामी-गिरामी सेठ नगीनभाई की सेठानी ने,

पूजा के थाल के नीचे,

गरणपत के हाथ को भीड़-छँटने तक दबाए रखा…

तेरह

सेठानियाँ

उक्...

वाई का हाथ क्या होता, वसई का केला !

वाई का अंगुली को क्या वोले, पानी का वीम्झल (मछली) का माफिक हाथ से सरकती होती। वाई का आँखी को क्या वोले, कबूतर का माफिक—पंछी का माफिक ! देसाई वावू का दीकरी के आँखी-वावत हम शुरू मेंच वोला होता—ऐसाच !

तुमेरे लोग वसंती वाई को क्या घंटा पहचानेंगा ?

इसीच वसुन्धरा वाई का दीकरी !...

वसुन्धरा उसका आई—पण, वोले तो उसका वाप कोण ?

येच वात अभी तक कबूतर का '—' का माफिक दावेला है—

खुदा कसम, तुमेरे लोग कभी भी, क्या, वसुन्धरा वाई से जाकूं पूछो, कि वसंती वेन किसका नमूना, किसका चिराग है !...

तुमेरे लोग बोलेगा—गरणपत रामा हलकट है, दूसरे का तोंड[1] में लात मारता है, डोंके[2] ऊपर काँड़ी[3] लगाता है !—पर, हमेरा भी तो कोई खुदा होवे, जिससे कोई पूछे, कि हमेरे जिगर का रगड़ा[4] किसने बनाया ? हमेरे जिगर-जिगर पर, जिसम-जिसम पर, जखम-जखम पर—किसने कबूतर का माफिक हग दिया ? किसने हमेरे अरमानों को लाल झंडी दिखाया ? किसने हमारी आखरी जिन्दगी का पाटिया आउट कर दिया ?

भाई लोग, आप हमेरे आई-बाप-सरीखा है, हम कोई गलत बात बोलिंगा, तो हमेरे मुँह पर गिन-गिन के जूती मारो ! क्या, अपन भी खानदानी मराठा है, हलकट बात मुँह से क्या '—' से भी नहीं बोलिंगा ! अभी आप सब लोग का मर्जी होवे, तो अपन सेठ लोग की '—' का गू भी '—' मेंच रहने देगा !

परण, काहे कूं ?

अपन क्या आप लोग के बाप का नौकर है ? तुमेरे लोग को, समझे क्या, जो-कुछ मेहरबानी करने का होइंगा, अपना जोरू का पेटीकोट में भरके सीलबन्द कर लेना ! क्या, परण अपन तो कबूतर लोग का पोल-पट्टी खोलिंगाच !···

भाई लोग, आप हमेरे लिए पाँडुरंग-सरीखा है। आप लोग का वास्ते एक भी जबान हलकट निकले, तो, क्या, हमेरा जबान खींच लेना, परण आप लोगच बोलो, जख्म सड़िगा, तो बास नहीं मारेगा ? हमेरी जिन्दगी भी अलाबाद का पीरू[5] का माफिक सड़ गया है, अभी तुमेरे लोग को बदबू आता होवे, तो क्या आप लोग हमेरा

---

१ मुँह। २. सिर। ३. दियासलाई की तिल्ली। ४. छोला। ५. इलाहाबाद का अमरूद।

'—' उखाड़ेगा ? अरे, बान्दड़[1] का माफिक आँखी किसी और को दिखाना ! क्या, गणपत रामा अपनी जोरू से भी कभी नहीं डरेगा ! क्या, सटंदन अपने को प्यार कूँ आके 'घाटी' बोला था एक दिन हम उसको एक लप्पड़ दिया, कि 'घाटी होईंगा हमेरा बाप !'....

अभी, क्या, अपन को गुस्सा नहीं दिलाना !...

देसाई बाबू से पूछे कोई कि हम कैसा पोपट-सरीखा जवाब देता है ! देसाई बाबू अपना गद्दी-ऊपर शेर का सरीखा गुर्र करता है, हमेरे से गीदड़ का माफिक घाबरता है ! अभी कोई बोले, देसाई बाबू हमेरा धनी, हम उसका नौकर—वो काहे कूँ हमेरे से घाबरता ? धनी काहे कूँ नौकर से घाबरता !...

इसीकोच कबूतर का पाँखी बोलते !

इसीकोच कोंबडी[2] का आँखी बोलते !

—बोले तो, अपनी आई का कसम खाके—अपन कोई पीर-फकीर तो है नहीं, पण आँखी से देखा—कानों से सुना—वोच[3] आप लोग से भी बोलिगा। क्या, गू जब तक पेट का अन्दर रहता है—बास नहीं मारता ! सेठ लोग का पोल-पट्टी भी अभी पेट-अन्दर का गू है, जभी बाहर निकलेगा, तो आप लोग को रास्ता ऊपर चलने को भी भारी पड़िगा !

अभी आप लोग समजता होईंगा—गणपत रामा का मगज फिर गया है, तभीच दूसरे लोग को कोलतार लगाता है ! पण, आप लोग हमेरे बाप का सरीखा है, आप से झूठ बोलिगा, वरली के गटर[4] में सड़िगा ! हमेरा भी माँ-बहन था, दूसरे लोग का माँ-

---

१. बन्दर। २. मुर्गी। ३. वही। ४. गड्ढे।

वहन का वास्ते हम बुरी नजर उठाईंगा, तो हमारी आँखी में बाबा जी का घंटा पड़िंगा !

हमेरे पहेलू में भी दिल है, साहिब !…

येच भुलेश्वर में जितना बाई लोग हमेरे को 'गरणपत भाऊ'[1] करके बूम[2] मारा होईंगा, हमेरी निगे[3] में वो बाई लोग हमेरी गंगा से भी ज्यास्तीच रहा होईंगा ।

आप लोग हमेरे को हलकट समझा क्या ?

कभी इधर कूँ आके हमेरे जिगर कूँ भी आजमा के देखो !…

हमेरे को 'भाऊ' बोल के, हमेरी आक्खी जिन्दगी को भी आप लोग चूना लगा के जाईंगा, तो अपन शिकैत[4] करना, पेशाब पीना बरोबरच समझिगा !

परण, आज जो-कुछ भी हम बोलता है, हमेरा टूटेला-फूटेला दिल बोलता है । हमेरी आई, हमेरी बहन बोलता है, सईदन बोलता है, साहिब—कमला बहन बोलता है ! गरणपत रामा-सरीखा दरेक गरीब मारगूस का माँ-बहन का आत्मा बोलता है । ये हमारा जख्मे-जिगर बोलता है—

लख्ते-जिगर बोलता है—

कासम भाई भी एकच पोपट है, हमेरे को लख्ते-जिगर कहता है ! हमको भी, साले की ऐसी-तैसी, कैसा गम—कैसा फिकर ? ऐसेच जिन्दगी सेठ लोग का पोट[5]-सरीखा भारी है, ऊपर से गम-फिकिर भरिंगा तो, मरिंगा—बे-मौत मरिंगा !

किसका माफिक—?

---

१. भैया । २. आवाज । ३. निगाह । ४. शिकायत । ५. पेट ।

करसन भाई सेठ का माफिक !

करसन भाई सेठ का माफिक बोले, तो कैसे ?

पोलिस लोग को करसन भाई की वायको[1] ने क्या चौपाटी का दरिया बताया—"हुं सवारे चहा तयार करवा माटे स्टोव बालती हती, त्यारेज ऐणे म्हारे साथे टिंगल करी हती। टिंगल-टिंगल माज स्टोव ऊँधो थई गयो, तेथी ऐंना कापडो सलगी गया हता ! हुं हवेशूं करूँ, मारी तकदीर नो पाटियो तो ऊँधों थई गयो छे !"[2]

परण, आप लोग सच्ची हिस्टरी हमेरे से पूछो !

· हमेरे को कहाँ से सुराग लगा ?

अरे, अपन उड़ता कबूतर का पाँखो गिनेगा, क्या ! आक्खा जिन्दगी सेठ लोक का भूठा-भाँडी[3] घसने में कोंवडी का अंडा-सरीखा फूट गयेला ! अपना जिगरी दोस्त पटवर्द्धन सेठ करसन भाई के घर रामा होता—उसी सेच सारा हिस्टरी हमेरे को मालूम हुआ।

पटवर्द्धन बोलता था—"पहेला अपन ऐसा जोखिम का काम करने को तैयार नहीं था, परण, पीछूं, यार, अपना भी नियत खराब हो गया। तुमकूं तो माहिती[4] है, गरणपत भाऊ ! अपना बाई कैसा हिरोइन का माफिक हुसनदार है ! फिर, बोल प्यारे, औरत के हुसन के आगे विश्वामित्र-सरीखा तपस्याचारी का दिल परण फिसल गया, तो हमेरे-सरीखा भुक्कड़ भाई क्या पवित्तर रह सकिंगा ?"

---

१. पत्नी। २. मैं सुबह चाय बनाने के लिए, स्टोव सुलगा रही थी कि उस समय 'उन्होंने' आकर मुझ से छेड़ाखानी करनी शुरू की। छेड़ाखानी—हास-परिहास—में ही स्टोव उलट जाने से उनके कपड़ों को आग लग गई। मैं अभागिन अब क्या करूँ ? मेरे भाग्य की तो तख्ती ही उलट गई है ! ३. बरतन। ४. जानकारी

हमने पूछा—"काय, रे पटवर्द्धन ! क्या-क्या बोला था तुमेरे को बाई ? काहे कूँ सेठ की जिन्दगी को लाल बावटा[1] दिखाया था ?"

पटवर्द्धन भी एकच पोपट है। जिगरी दोस्त। बोले तो, फाँसी पर चमगादड़-सरीखा[2] लटक जाईंगा, परण अपना दोस्त लोग से पोल-पट्टी की बात कभी नहीं छुपाईंगा। अपन से तो वह और भी तोंड का पान-सरीखा रहता था। काहे कूँ बोले, तो अपन भी उसको एक-से-एक टेसदार हिस्टरी बोलता है—सिनेमा के पर्दे पर, बोले तो, किसी का आई-बाप ने भी ऐसा टेसदार किस्सा नहीं देखा-सुना होईंगा !

क्या, अपन भी मूँछ का बाल '—' को, '—' का बाल सिर को ले जाता है ! बात चलाया था, पटवर्द्धन का—क्या, बात-बातमेंच कुरला से कांदोवली चला गया।

दारू का नशा भी काँग्रेस सरकार ने एकच बंद करवाया।

आक्खी[3] मुंबई[4] में, बोले तो, पाव रतल[5] दारू रखे, तो पन्नास[6] का जूता डोंका ऊपर पड़ता है। तीन महीने के वास्ते शाम-सुबू सवा रुपए का काँदा भजोया, ऊसल-पाव खिलाईंगा—घर-जमाई का माफिक।

अभी आप लोगच बोलो, क्या हम दारू पिईंगा—क्या नशा करिंगा ? काँग्रेस सरकार का राज में दारू अमृत-सरीखा दुर्लभ हो गयेला। सूंघने को भी सपना हो गयेला।

परण, बोले तो, आप लोग हमेरे कोच बदमाश बोलिंगा !

येच मुँबई में सरकार काच लीडर लोग दारू बनवाता है।

---

१. लाल झंडी। २. जैसा। ३. पूरी। ४. बम्बई। ५. दो छटाँक। ६. पचास।

बिल्डिग की सीढ़ियों के नीचूं तक ये लोग भट्टी बनवाते ! क्या, 'खुद डैमिस, खुद पोलिस' वाली गोस्ट[1] है—खुद चोर, खुद साहूकार ! अभी लीडर लोग का घर में पोलिस लोग पण तलाशी लेने को नहीं सकते—पकड़िंगा कौन ?

नहीं तो आप लोगच बोलो, क्या, आजादी मिले कूं १० साल भी नहीं हुआ, पण जिस लीडर का घर में उँदीर (चूहा) का खाने को दाना नहीं, भीख मागने कूं भी थैला नहीं—वोच आज, मुंबई सरीखा शहर में, चार-चार, पाँच-पाँच बिल्डिग का धनी[2] है ! उसकेच आगे-पीछूँ पन्नास-पन्नास हजार का कार घूमते ! मोठे-मोठे[3] बैंकों में उसीकेच लाखों रुपए !

—अपना छाती, अपना आन-औलाद का सिर ऊपर हाथ रखके कोई लीडर बोले, कि कइसे-कइसे गुनाहों की बदौलत घास-पात का माफिक दौलत इकट्ठा कियेला है ! बोले तो, आक्खा हिन्दुस्तान का लीडर लोग का हाथ में गऊ का पूँछ पकड़ाकूँ कोई पूछे, क्या, रुपया पीछूँ पंधर[4] आना हराम का कमाई है या नहीं ?

पण, अपन को क्या करना किसी से ?

अपन किसी को बुरा क्या बोले ? अपन सबको आई-बाप-सारीखा समझता है। तीन-चार टाइम भाँडी घसता है, शेठ लोग को पोरी-पोरे को शाला[5] पहुँचाता है—आक्खा दिवस खून को पानी बनाकूँ, पोछूँ—पोट[6] भर दाना, '—' ढंकनेकूँ कापड़ नशीब होता है। ये दूसरी गोष्ट है, कि सेठानी का मेहरबानी हो गया तो तर

---

१. बात। २. मालिक। ३. बड़े-बड़े। ४. पंद्रह। ५. पाठशाला। ६. पेट।

मार खाने को मिलता है, पेट का पालते नहीं, '—' का पालते हो !

अरी, छोटी तो होती ऐसा ही मेरे जी ! आप लोग बोलेंगा, मदन्त कुछ बेदरद है। क्या, अपन आप लोगों का लिहाज करके '—' शा-'—' नहीं रख देता है। पण, अपन दूसरे कूँ कैसे कुछ बोलेगा ?

रहमदीन क्या बोलता था, वो सुनो। आप लोग मेरे कूँ कुछ मत बोलना। वो रहमदीन पता कुछ न जानता !......

बोलता था—'हम सेठानी को बोला था, 'कच्चा पक्का डोंका-कलर[1] रखेंगा तो बीच बाजार में चोली-घाघरा निकालेगा।' पण, सेठानी हमेरे कूँ क्या जवाब दिया, 'औरत का चोली-घाघरा जभी खोलता है, तब और खूबसूरत दिखाई देती है !' बोले तो, बात तो सेठानी सच्चा बोला था ! पीछूँ हम क्या करता, मतलब हुआ ?—साथ पीछूँ से भी। यार, काहे लोग का दिल भी अकेला पत्थर का साकेत होवे को—बोल दिल हमेरे को चाहिते पड़ा ! ताके[2] का अन्दर मिला करके जो जमाना झोंकी लिया है—कुछ दम तो सेठ जरूर दिल-खराब[3] हो गया ! पीछूँ सेठानी ने हमेरे से तेल छड़काने—बोले कुलमदा—अभी क्या बोले, काहे को चोंडी-तरीखा बोलकूँ मगन तो बाहर से बैठाये भाग गया। पीछूँ सेठानी बोला हमेरे को, 'तुम किधर चले गया था। इधर पुलिस ढूँढ-ताक कर रही थी। मैं कह दिया है, 'रहमदीन कल ही रवा[4] बम्बई गया है।' अभी अपने कोई पुलिस तो देता ही नहीं !'......सेठानी का मिजाज भी कितना ऊँचा जानना ! सेठ को सावे से ज्यादा चला

१. लिए नर। २. बात। ३. सनकी। ४. खुशी।

दिया, घर को थोड़ाच आगी लगा ! बाई का दिल भी एकच—अपना जिसमकूँ भी जला लिया, ताकि पीछूँ किसी कूँ शक-शुबहा नहीं होवे !........."

हम पटवर्द्धन का हिस्टरी सीलोन रेडियो का माफिक सुनता रहा।

वो पोपट-सरीखा बोलता रहा—"महीना-भर हम बाई के आँङ[1] को वैसलीन-मलम लगाता रहा। एक दिन हमेरे से नहीं रहा गया। बोला, क्या—'बाई तुमेरे जिसम में तमाम जखम हो गयेला है ! बड़ा तकलीफ होता होईंगा !' अभी तेरेकूँ क्या बोले, यार, बाई हमेरे को बोला—'पटवर्द्धन, जिसम में जितने भी घाव हुए हैं, एकाध महीने में भर जाएँगे। दर्द जितना है, घावों के भरते ही थम जाएगा—पर, तेरे सेठ ने मेरे दिल को जो घाव लगाए वो क्या इस जनम में भरेंगे ? उनका दर्द कभी चैन लेने देगा मुझे ?' और बाई तो हमेरी छाती से अपना सिर लगाके रड़ने[2] लगा, रे ! लहान मुली सरीखा[3] !"

अभी लोग पूछेगा, काहेकूँ पटवर्द्धन का बाई रड़ता था ? काहेकूँ उसने अपने धनी[4] की जिन्दगी का पाटिया आउट किया ? काहेकूँ उसने पटवर्द्धन से साँठ-गाँठ लगाया ?

ऐसे-ऐसे बाई लोग का हिस्टरी को कोई क्या बोले ?

पटवर्द्धन हमको बताया था—

उसका बाई यशोदाबेन का हिस्टरी।

हिस्टरी को अभी क्या बोले ?

हिस्टरी बोले, सो पोल-पट्टी !...........

---

१. शरीर। २. रोने। ३. छोटी-सी बच्ची की तरह। ४. पति।

चौदह

भुलेश्वर के मन्दिर के सामने से होती हुई, जो गली निकली है, वह विट्ठलभाई पटेल रोड की छाती से चिपक जाती है; दोनों के संयोग से खेतवाड़ी मेनरोड का जन्म हुआ, जो न्यू चर्नी रोड को काटके त्रिभुवन रोड कहलाता है—जैसे दारा का सिर काटके औरंगजेब बादशाह बना था।

पर, त्रिभुवन रोड औरंगजेब की तरह कट्टर धर्म-पंथी नहीं है। जिस बम्बई में महाराष्ट्र-गुजरात, अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, रक्तार्चन के लिए दीप-बाती लिए प्रस्तुत रहते हैं—उसी बम्बई में महाराष्ट्रियन ललनाओं और गुजराती रसिकों की केलि-स्थली है, यही त्रिभुवन रोड।

इसी त्रिभुवन रोड में साधूश्रेष्ठ गाइगे महाराज का प्रचार-कार्यालय है, मासिक 'जनता-जनार्दन' का कार्यालय है, और इसी

त्रिभुवन रोड पर नागप्पा-शेषप्पा का वारांगना-आवास भी है, जहाँ 'ऊँचे-ऊँचे रेट' की प्राइवेट वारांगनाएँ रहती हैं।

इसी त्रिभुवन रोड पर सुप्रसिद्ध ड्यूक कम्पनी है, जिसके शीतल-पेय-निर्माण कारखाने में; ड्राइवर और चपरासी तक आवारा-लावारिश-सी दातून वालियों की उर्वरा मातृ-सत्ता पर शासन करके फुटपाथों की आबादी बढ़ाते हैं।

इसी त्रिभुवन रोड और इसकी मौसेरी बहन पाव वाला स्ट्रीट में कई हिरोइनें एक्सट्रा बनते-बनते पेन्शन पर आ गई हैं अब और ढलती उमर में तन का सौदा करके रोटियाँ जुटा रही हैं। इसी त्रिभुवन रोड पर—मक्खन की टिकियों-सी पारसी लड़कियाँ भी हैं. जिनका अधिकांश समय साड़ी-सेंडिल और 'ब्वॉय फ्रेण्ड' के चुनाव में बीतता है, और भाई-बाप मुर्गी के अण्डे, शहद और चन्दन की लकड़ी लेकर पारसी-टेम्पलों के आगे बैठे रहते हैं।

इसी त्रिभुवन रोड पर कई ऐसे गृहस्थ रहते हैं, जो जवानी ढल जाने पर ही बेटियों को ब्याह करने की अनुमति देते हैं, क्योंकि जवानी के दौर में किसी गजटेड सरकारी अफसर से भी कहीं ज्यादा तनख्वाह वे घर पर ही पाती हैं।

ये गृहस्थ धनोपार्जन के लिए अपनी बहुओं और बेटियों को काँदीवली, गोरे गाँव, मलाड—अँधेरी तक कारवाले सेठों के साथ भेज देते हैं। वे जब लौटकर आती हैं, तो नई साड़ी और नई कमाई लेकर........

त्रिभुवन रोड की रूपसियाँ जब मराठी साड़ियाँ पहने बाहर घूमने निकलती हैं, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, कि ये अबलाएँ अपने पति, भाई और पिता के पोषण के लिए अपने पवित्र गात

का सौदा करने जा रही हैं !

इस बम्बई को कोई क्या कहे, जहाँ भाई बहन को साथ लेकर उसकी पवित्रता का सौदा करने जाता है। जहाँ पिता अपनी कन्या की पावनता को रक्त-सापी जाता है, जहाँ सैकड़ों मुसटण्डे केवल नारी की कमाई पर पलते हैं—पलते नहीं, ऐय्याशी करते हैं !

यहीं, इन्सानियत की पूँजी को मद्रास में ही गड्ढे में दबाकर आए हुए, आवारा मद्रासियों का 'गेंग' रहता है, जिनके मुखिया हैं—नागप्पा, शेषप्पा ! जो दिखाने के लिए पान की छोटी-छोटी दुकानें लिए बैठे हैं—पर, कमाते हैं, दादागिरी की बदौलत—मर्द होकर औरत की कमाई खाते हैं।

बम्बई उस कोढ़ी की तरह है, जिसके मुँह पर कोढ़ के लक्षण न फूटे हों, और शरीर का जो सारा कोढ़ कीमती दुशाले से ढँके रहता हो !

कोढ़ ला—इलाज होता है !

पन्द्रह

नारी के शोषण का मूल कारण है, आर्थिक-असमानता !

इसी आर्थिक-अव्यवस्था के कारण नारी खिलौनों की तरह बाजार में बिकती है, टूटती है; मिट्टी में मिल जाती है—वह भी, उसका मातृत्व भी—इन्सान की इन्सानियत भी अपने साथ दफन कर लेता है, नारी का यह नरक-प्रस्थान !

जो अतिनिर्धन हैं, वे विवश हैं—अपनी माँ-बहनों की अस्मत की रखवाली उनसे नहीं हो पाती। भाई इतना मजबूर है कि वह बहन को वेश्या बनने से बचा नहीं पाता। इसी तरह यहाँ मानवीयता के सारे नाते-रिश्ते अपवित्र-असम्बद्ध होने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

दूसरी ओर, जिनके पास आवश्यकता से अधिक धन है—वे नारी को भोग-विलास का माध्यम मानते हैं—इससे ऊँचा स्थान वे

नारी को देना नहीं चाहते। इस प्रकार नारी की अवस्था, दोनों स्थितियों में, शोचनीय होती जा रही है—यह भी समाज का आंतरिक कोढ़ है।

आर्थिक-असमानता का जितना गहरा दलदल बम्बई-जैसे जन-संकुल शहरों में है, अन्यत्र नहीं। यहाँ एक ओर हजारों वेश्याएँ हैं, जिनके भाव आटा-चावल की तरह बँधे हुए हैं; दूसरी ओर प्रच्छन्न-रूपा वारांगनाएँ हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से गृहस्थी बसाए रहती हैं! और हजारों ऐसी अभाव-पीड़िता भी हैं, जो दुअन्नी-चवन्नी में ही अपना शरीर किसी को भी सौंप देती हैं।

एक ओर नारी की यह दयनीय स्थिति है, तो दूसरी ओर यहाँ ऐसी औरतें भी हैं, जो हरी साड़ी के साथ लाल, लाल साड़ी के साथ हरा सेंडिल 'चूज' करने में व्यस्त रहती हैं। उनकी लिपस्टिक-पाउडर का खर्च साधारण गृहस्थ के पूरे घर के खर्च के बराबर होता है……

एक ओर पंचपुरा-आवासों में, कहीं-कहीं, कुत्ते के लिए भी अलग कमरे हैं, दूसरी ओर कीचड़ की नालियों (पाइपों) के अन्दर मानव-बस्ती बसी है, फुटपाथों की क्या गणना!

गणपत के शब्दों में बात कुरला से काँदीवली चली गई।

तो पटवर्द्धन गणपत को बोला था—

सोलह

उधर—

मुंबई का शेयर बाजार का उधर—

आमंचा[1] धनी पण दलाल[2] होता। सेठ 'करसनदास टीकमदास माँखरिया, शेयर एण्ड स्टॉक ब्रोकर'—अशा त्याचा आफिसांत पाटिया लावलेला होता।[3]

उधरच, गणपत भाऊ, जिधर ये दलाल लोग आक्खा दिवस कुतरा-सारीखा[4] बूम मारते—नेशनल रायन, टाटा डिफर्ड, ई० डी० ऑर्डिनरी—सेंचरी······लिया—दिया !—बोले तो, एक दिवस एक 'परदेशी' को हम बोला होता, "क्या, भाई साहब, ये लोग लगातार चार-पाँच कलाक[5] तक जोर-जोर से बूम मारते, इनका मगज नहीं

१. हमारा। २. Share Broker. ३. ऐसा, उनके कार्यालय में, साइन-बोर्ड टंगा था। ४. कुत्ता। ५. घंटे

दुखता होइंगा ?"

बोले तो, 'परदेशी' भी एकच जासूस, एकच पोपट !

बोला—"कुत्तों को 'अमृतधारा' लेते देखा है कभी ?"

हमेरे को भी अँटी पड़ गया; जैसा काम—वैसीच सामर्थ पांडुरंग देने को।

वैसे, बोले तो, बिजनेस-सारीखा माल-पानी और किधर मिलने को ? राखड़ी[१] का चुटकी से चाँदी का महल बनाने को, बोले तो, बिजनेसच करने को। अपनाच करसनदास सेठ को क्या बोले—तभी हम लहान होता; येच करसनदास का. इसीच भुलेश्वर में, एक कंटम गाँठिया-पापड़ी का दुकान होता। आज का दिन, बोले तो, करसनदास की जिंदगी को बाई ने सुरंग लगा दिया—परण, उसकी लाखों की गिरस्ती, बोले तो, इधरच, पन्नास हजार रुपया अपना सेठ ने वो त्रिभुवन रोड वाली शकुन्तला बाई राँगड़ेकर का नाम ऊपर 'इण्डिया बैंक' में जमा कियेला।

शकुन्तला बाई काच हिस्टरी अपन बोलिंगा।

महाराष्ट्र नाट्य मंडली में नटी[२] होती।

उसका एक-एक लावनी बोले तो—एकच टेसदार!

उसका एक-एक डैन्स[३] बोले तो—टापदार !!

पिल-हाउस पर 'बाम्बे थिएटर' बोले, तो किसी ने भी देखा होइंगा ! वोच थिएटर में महाराष्ट्र नाट्य मंडली का नाटक होता! त्या दिवसीं क्या नाटक होता[४] —दुष्यंत-शकुंतला।

---

१. राख। २. अभिनेत्री। ३. डांस। ४. उस दिन क्या नाटक था। 'होता' था के लिए प्रयुक्त होता है, बम्बइया हिन्दी में, और 'होती-होते' थी-थे के लिए।

शुक्र का दिवस होता।

अमेरे करसन सेठ उधरच नाटक देखनेकूँ गयेले।

तो[1] नटी शकुन्तला, वोले तो, दुष्यंत की शकुन्तला-सरीखीच सुन्दरी ! तारुण्य के भार से उसका छाती, वोले तो, पोरू का डाली का माफिक हिलती होती। हुसन से उसका आँखो, वोले तो, विजली का वलव-सरीखा रोशनी देती होती, पंखा-सरीखो फरफराती होती।

वोले तो, क्या, अपना सेठानी पण कम हुसनदार थोड़ीच !

पण, घर का मुर्गी, वोले तो, दाल-वरोवर !

करसन सेठ उस नटी शकुन्तला बाई का दुष्यंत वन गयेला।

अपना सेठानी यशोदावेन से शादी वनायेला एकच वर्ष होयेला। पण, क्या वोले करसन सेठ को, उस विचारी का तकदीर 'गोविंद तो आला-आला'[2] के दिवस की हंडी-सरीखा फोड़ डाला—करसन सेठ ने।

क्या, गणपत भाऊ, अपन तो प्यारे, तुमेरा जिगरी दोस्त।

---

१. वह। २. 'गोविंदा' का त्यौहार महाराष्ट्रीयन कृष्ण जन्माष्टमी को मनाते हैं। इस उत्सव में, अलग-अलग मोहल्ले वाले अपनी गली में आर-पार रस्सी बाँध कर उसके वीच में पानी की हंडी लटका देते हैं। हंडी के वाहर नोटों की माला वँधी रहती है। इन हंडियों को फोड़ने के लिए, जो टोलियाँ निकलती हैं—उन पर रंग का पानी डाला जाता है। हंडियाँ काफी ऊँचाई पर लटकाई जाती हैं—और उन्हें फोड़ने का नियम यह होता है कि एक-दूसरे के कंधों पर पैर रखके चढ़ें, फिर ऊपर वाला अपने सिर की टक्कर से हंडी को फोड़े। इसमें ये टोलियाँ वड़े कौशल का प्रदर्शन करती हैं। जोखिम इसमें काफी रहता है—हाथ-पाँव किसी का टूट जाता है, कभी-कभी सिर ही फूट जाता है। पर इन लोगों का उल्लास इतना अधिक होता है, कि चोट को कुछ गिनते ही नहीं। हंडियों में वँधे रुपयों की सँख्या कहीं-कहीं पाँच सौ रुपए तक की होती है।

दोस्ती में पोस्ती अपन सिखेलाच नहीं। क्या अपन लहान[1] च होता, उस समय से करसन सेठ के घर ऊपर भाँडी घिसता होता। और बोले तो, करसन सेठ को मूँछ-दाढ़ी का बाल भी हमेरे साथ च आयेले ! करसन सेठ की आक्खी जिन्दगी का पोल-पट्टी, बोले तो, हमेरे लिए हाथ ऊपर का चोपड़ी।

इसोच त्रिभुवन रोड का ऊपर, करसन सेठ ने शकुन्तला बाई को बंगला किराए में लियेला[2]। पीछू कदी-कदाच[3] घरी आवे करसन सेठ, वैसे बोले तो, महीने में पंचवीस[4] दिवस शकुन्तला बाई का उधरच ! शामकूँ शेयर बाजार से छूटे, तो सीधा त्रिभुवन रोडकूँ। उधर से कार में लेकूँ शकुन्तला बाई को चर्चगेट, मरीन लाईन्स और मलाबार हिल—बालकेश्वर घुमाने का। पीछूँ[5] इरोज किंवा मेट्रो-लिबर्टी में पिक्चर देखने का।

खाने को, बोले तो, हाई कलास से हाई कलास होटलों में। अपना करसन सेठ गुजराती होता, लहसुन-प्याज तक खाता च नहीं होता। पण, बोले तो, शकुन्तला बाई भी एकच पंछी—करसन सेठ को ऐसा अंटो में लियेली, कि होटल में पहुँचे तो आमलेट—कबाब से नीचूँ बात नहीं।

त्रिया-चरित्र को बोले तो, भगवान् पाँडुरंग भी नहीं समझेले ! चहा नहीं पीते होते करसन सेठ, मगर साल-भर शकुन्तला बाई का घोंसले मैंर हकूँ, बोले, तोदारू का बाटली पिए बिना संडासकूँ[6] भी नहीं जावे !

---

१. छोटा ही। २. लिया था। ३ कभी-कभी। ४. पच्चीस। ५. पीछे, बाद में। ६. शौच को।

सत्रह

क्या, गरणपत भाऊ, एक बीड़ी तो पिला, प्यारे !

बोले तो, फक्त आज का दिन अपन को कड़काई है।

कल से बोले, तो अपन ये गांडा सेठ लोग-सरीखाच फैशन में रहिगा।

बाइ आज शामकूं अपने को पन्नास रुपया, बोले तो, नुसता कपड़ा के लिए देंगा।

अभी तू सोचता होईंगा, हमेरी बाई काहेकूं हमेरे ऊपर इतनी मेहरबानी करने को ? पण, प्यारे बाई लोग का दिल, बोले तो एकच दिल ! लगन की पीछूं तीन बरस तक, रो-रो के जिन्दगी काट दिया बाई। करसन सेठ तो घरच नहीं आने को। जवानी बोले तो, इलाहाबाद का पीरू-सरीखी फूटेली बाई को।

क्या, प्यारे, मरद लोग को जवानी का प्यास बझाने के वास्ते

लाखों रास्ते ठहरे—परण, बाई लोग को किधर इतना मौका। सेठ जी, मेरा यार घरच नहीं आवे। अपना बाई किधरकूं जावे ?

बोल प्यारे, घर में एक अपनच। बाई अपन कोच नहीं देखे, तो पीछूं किसको ? इसमें बोले तो, गुनाह किसका ? हमेरी बाई का ? हमेरा ?.........

पोपट, तू कहाँ बगैर गाँठ का गन्ना है ?

तेरी वसुन्धरा बाई का साथ में क्या-क्या लगा-लिपटी है, अपने लिए हाथ ऊपर का चोपड़ी। तू-मैं, बोले तो, एकच मुर्गी का बैदा-सरीखा[१]। गुना (गुनाह) न तूने किया, प्यारे, न अपने ने ! न तेरी वसुन्धरा बाई ने, न हमेरी जशोदा बेन ने !

गुनाह बोले तो करसन सेठ का !

गुनाह बोले तो, देसाई सेठ का !

शकुन्तला बाई को भी गुनेगार अपन कैसे बोले—बाई लोग[२] तो भागीरथी माई का पानी-सरीखा, अब हलकट मरद लोग उससे आचन करे, या मैली '—' धोवे!.........

आक्खा तीन वरस तक अमेरी बाई भी '—' में मुहर मारकूं बैठेली। गैर से आशनाई करने के नाम पर, आंङ[३] ऊपर घर का कबूतरका पर भी लगने नहीं देवे ? एक दिवस हमेरे दिल को भी बैदा खाये का जोश आयेला। अपन भांडी घसता होता। बाई चाय का वास्ते केतली लेने को आयेली।

बाई बोली—"वासणो आज चमकताज न थी ! केम ?"[४]

---

१. अंडा। २. औरतें। ३. शरीर। ४. बरतन आज साफ नहीं चमक रहे, क्या बात है ?

बात बोले तो, सच्ची।

पण अपनी अकल ऊपर कबूतर हगेला। वोच दिन हम पिल-हाउस का सिनेमा ऊपर इंगलिश पिक्चर देखेला। उस पिक्चर का सरीखा चूमा-चाटी, बोले, हिजड़े का जिसम भी जोर मारने को! अपन तो करसन सेठ का घर ऊपर खुराक खायेला।

भुलेश्वर पण एक च जागा![1]

पोरी लोग के नखरे कूँ कोई क्या बोले; बाल पकेली, गाल पिचकेली बाई भी जवानी की बत्ती लगाकूँ चलने को! अपन, शपथ पाँडुरंगाची, सच्ची बोले तो, बाई लोग को आई-सरीखा[2] समजने वाला। पण, जिसम का चर्बी को कोई क्या बोले? दररोज नहीं, दर-अठवाडिया[3] नहीं—पण, महीना पीछूँ एक-दो दफा तो औरत माँगताच, माँगता!

औरत, बोले तो, मरद की जिंदगी!

औरत, बोले तो, माँ नहीं बने—पीछूँ बच्चे का परवरिश बाप तो बाप, प्यारे, बाप का बाप भी नहीं कर सकने को!

औरत, बोले तो, औरत नहीं बने—ठंडी-गरम राती को चिटक के नहीं सोवे, तो क्या मरदका जिंदगी भी बगैर साखर[4] का चा-सरीखा! बगैर मस्का का ब्रून-सरीखा!

हुसनदार औरत बगल में होवे, तो जिंदगी, बोले तो, पुनवेची[5] रात-सरीखी! नहीं होवे, तो अमावस च समझो!......

इस हिसाब से, बोले तो, अपन रामा लोग का जिंदगी। विना पाँखी का कबूतर-सरीखी! बगैर पेटरोल की गाड़ी-सरीखी! बगैर

---

१. स्थान। २. माँ-सी। ३. प्रति सप्ताह। ४. चीनी। ५. पूनम की रात।

पेटी का कांडी-सरीखी ![1] बगैर अचार की हाँडी-सरीखी, प्या पीतल की भांडो-सरीखी ![2]

सेठ लोग का घर में खाने को, बोले तो, माल ही मिलता है देखने कूं, मुंबई शहर का परी लोग—कोई अपना जिगर का ऊप ढक्कन भी लगाकूं रखे, तो आखिर कब तक ?……

अपन लोगों के ज्यादा करके सेठ लोग, बोले तो, घर ऊपर का खूबसूरत-से-खूबसूरत बाई को छोड़ के रंडी लोग का पलंग ऊपर जाने को ! पवनपुल-ऊपर नाच देखने को, गाना सुनने को—बोले तो, टेसदार लावनी ।

क्या, पोपट, अपन किसका गोष्टी करता होता, रे ? वोच परी आनन्दी बाई थी ? आनन्दी को अपन क्या बोले, उसका पटवर्द्धन सेठ भी हमेरे करसन सेठ-सरीखाच ! ये सेठ लोग का चर्बी को कोई क्या बोले ? पैसे का गर्मी च ऐसा होता है ! --

आनन्दी बाई, बोले तो, नरगिस-सरीखी ।

क्या, सुरैया-निम्मी-सरीखी ।

पोपट, मोनवर सुलताना-सरीखी !

पण, पटवर्द्धन साहिब का वास्ते वो पवनपुल का नर्मदा बाई च सुरैया-नरगिस । उसका एक-एक नखरा ऊपर, एक-एक अदा का ऊपर पटवर्द्धन साहिब का खजूर छाप नोट सरकने कूं । उस रांड का ऊपर पटवर्द्धन साहिब जिन्दगी कुरबान करने को, कबरस्तान ऊपर बैठेले ।

उधर, घर ऊपर, बोले तो, आनन्दी बाई का जिसम पाकेले

---

१. बिना डिब्बी के सलाई की तिल्ली-सी । २. पीतल का बरतन ।

केले का माफिक ! उसके जिसम को नीचे से ऊपर कूँ देखे तो, 'हाय' करकूँ, जिगर ऊपर हाथ कूँ दबाकूँ रह जावे इन्सान ! ऊपर से नीचे कूँ देखे तो—उसका ब्लाउज को, साड़ी को क्या बोले ! अर्द्धा-अर्द्धा छाती पीरू-सरीखा बाहरच ? साड़ी ऐसी, गोल्ड-फ्लेक सिगरेट का कागज-सरीखी !

पीछूँ अपन सखाराम को क्या बोले ?……

केला का छिलका ऊपर पाँव पड़े, तो फिसलना च फिसलना !

खूबसूरत बाई को एक नजर रास्ता ऊपर भी देखे, तो लोग-बाग जिगर थामकूँ रह जाता है; सखाराम का तो, घर ऊपर च बिजली गिरेली !

अभी सखाराम कोण, बोले तो, अपनाच बिरादर !

आक्खा भोईवाड़ा का लोग-बाग बोलता होता, आनन्दी बेन का पोरा-पोरी बोले तो, सबका नाक-नक्शा सखाराम-सरीखा !

सखाराम कोण ?

पटवर्द्धन साहिब का नौकर !

नौकर भी कोण ?

भाँडी घसने वाला !

पण, बोले तो सखाराम भी किसका यार ?

हमेरा !

अपन कोण, सखाराम का जिगरी दोस्त—उसका सेठ

पटवर्द्धन का नाम-राशी !

क्या बोले, सखाराम घर ऊपर का जूठा भाँडी घसता-घसता आनन्दी बाई को पण घस दियेला ! उसका सारा माल-पाणी निचोड़कूँ रख दिएला ! औरत बोले, तो, हाथ का ऊपर का ताश-

पत्ती—बेगम का ऊपर बादशाकूँ मारे तो ?

बेगम, बोले तो, तर !

खुश !

ये हिस्टरी, बोले तो, सेठ पटवर्द्धन गोबर्द्धन साहिब को मालूम पड़ गएली !

उस कसाई कूँ अपन क्या बोले ?

वोच हमेरे जिगरी दोस्त सखाराम की जिन्दगी कूँ वरली का गटर में पहुँचाएला ! भायखला का मोड़ ऊपर वोच ऐसे अपनी कार को दीवाल से टकराया, कि उसका तो '—' का बाल भी टेढ़ा नहीं, पण हमेरे जिगरी दोस्त सखाराम भाऊ का, बोले तो, आखरी जिन्दगी का पाटिया च आउट !......

अपन गरीब नौकर लोग का जिंदगी च ऐसा बैलून-सरीखा ! सेठ लोग हवा निकालकूँ रखने को देखता, सेठानी लोग हवा भर कूँ.........

हवा भी, बोले तो, इतना भरिंगा—एक दिन फ्याट्ट !......

क्या, गरणपत भाऊ, क्या, पाद मारता क्या रे ?

नहीं तो ये 'फ्याट्ट' का बूम किधर से आया ?......

क्या, दोस्त, तुम भी हमेरे कोच काठ का उल्लू बनाता, रे ?...

क्या अपन तो जसोदा बेन, अपना सेठानी का हिस्टरी शुरू किया होता रे ? शकुन्तला बाई का, करसन सेठ का पोल-पट्टी शुरू करेला !

क्या, पोपट, जरा 'सूखा'[1] तो खिला, प्यारे !

---

१. बम्बई में बीड़ी में भरी जाने वाली तम्बाकू को, चूना मिलाकर, सुर्ती की तरह खाते हैं—उसी को सूखा कहते हैं ।

अठारह

गणपत भाऊ !

यशोदा बेन को तू कल-परसों—कदी[1] सड़क ऊपर देखा क्या, रे ? तेरी आँखी को तो पारले का पिपरमेन्ट लग गयेला है, देखिंगा क्या ? औरत के हुसन का, बोले तो, पर्दाच ऐसा होता है; वसुन्धरा बाई का जोबना, बोले तो, कबूतर का ऊपर कबूतर का माफिक तेरे ऊपर चढ़ेला ! बोले तो, तेरा खयाल-आदतपण पोपट- सरीखा[2] !

पोपट-सरीखी आदत, बोले तो, खड्डु में गयेली बासकूं सूँघने का !

पण, तू प्यारे, हमेरा जिगरी दोस्त ! हिस्टरी का बास-इत्र, बोले तो, तेरे से क्या छिपाने का ? 'जोबना', बोले तो, हुशन ! उधर, फार दिवस गयेले,[3] बोरीवली[4] ऊपर हम एक भैय्या[5] जी का उधर,

---

१. कभी। २. शुक। ३. बहुत दिन हुए। ४. बम्बई का एक उपनगर। ५. बम्बई में उत्तर प्रदेशीय दूध वालों को 'भैय्या' कहते हैं।

भैंस का तबेला ऊपर । वोच भैय्या जी हमेशा-दर-रोज एक गीत गाता होता, बोलता होता, "हम इसको जैजन्ती[1] का राग से गावत है !"

गाता होता—

"जोबना को दिन मेरो, आने दे सैंया मोरे !"

हम पीछूं, एक दिवस, इस गाणी का मतलब पूछा होता ।

भैय्या जी बोले—"एक लड़की थी; उसके खसम ने क्या करी—उसको पलंग-ऊपर खींचा ! लड़की को जोबना नहीं, तो बोली—'जोबना को दिन मेरो, आने दे सैंया मोरे !"

"पीछूँ ?" हम पूछा ।

"लड़की बोली," भैय्या जी बोले—"आप-ही-आप मैं तोरे धोरे आऊँगी !"

"मतलब बोले तो ?" हम पूछा ।

"लड़की बोली," भैय्या जी बोले—"इसका मतलब हुई, जवानी आने पर, मैं खुद तुम्हारे पास आऊँगी !"

यशोदा बेन का साथ, बोले तो, हमेरी गोष्ट भी ऐसीच !

वो दिवस का, तुमेरे को याद है, भाँडी घसता टैम का हिस्टरी हम बोलता था । क्या, यशोदा बेन हमेरे को पूछती होती—"केम, पटवर्द्धन, वासणो आज चमकता न थी ?"

बात, बोले तो, सच्ची !

पण, हमेरी अकल को काँडी लगेगी । जिसम को पारला का ओरेंज लागेला ।

---

१. जै-जैवन्दी ।

हम क्या बोला—"इस वखत तो, बाई, तुमेरा जिसम भी नहीं चमकता है। अभी हमेरे को वोलो, हमेरे से मोहबत, बोले तो, इश्क करो—तुमेरा-हमेरा, दोनों का जिसम चाँदी का माफिक चमकेगा !"—और हम लपक कूँ, बाई का पप्पी[1] ले लिया होता।

बाई को क्या बोले ?

हमेरे को लाफा[2] मारेली !

पण, हमेरी बाई का लाफा भी, बोले तो, जैसी-कैसी बाई का पप्पी-सरीखा च !…

अभी बोलो, उसका पप्पी कईसा-कईसा टेसदार होईंगा, जिस बाई का लाफा ऐसा टेसदार होईंगा ? क्या, गणपत भाऊ, बाई लोग का दिल भी एकच जासूस ! दारू में 'डौन' ड्राइवर का माफिक किधर एक्सीडेन्ट करिंगा—किसी दूसरे को क्या माहिती पड़िंगा ? बाई लोग का दिल—बोले तो, कबूतर का पाँखी का माफिक। किधर कूँ उड़िंगा, किसका घोंसला आबाद करिंगा, किसको माहिती ?

बाई लोग का दिल भी एकच।

हमेरे को बाई बोली—"जरा सेठ ने घेर तो आवा दे, हुँ तने पछी नौकरी ऊपर थी कढ़ावी नाकीश ! हुँ तारी बेन-जेवी, तूँ मारा ऊपरज कुदृष्टि नाखिए छीए !"[3]

गुजराती, बोले तो, हम भी समझताच, समझता !

पण, हम अपना तोंड[4] ऊपर शतरंजी[5] डाल कूँ रह गयेला !

---

१. चुम्बन। २. थप्पड़। ३. जरा सेठ को घर आने दे, मैं तुझे नौकरी से अलग करवाऊँगी। मैं तेरी बहन-सी थी, तूने मुझ पर ही कुदृष्टि डाली ! ४. तोंद । ५. दरी ।

खामूश रह गएला !

चोप रह गएला !

० ० ०

वैसे, एक दफा तो, हमेरे को भी दत्तू भाऊ-सरीखा जोश आ गया होता ! बाई कूँ देखे, तो गुस्सा का वखत ऊपर और भी हुसन-दार दिखती होती ![1] अभी, दत्तू भाऊ, बोले तो, कोण ?

वोच, रे, पोपट, वोच !

जिसकूँ अभी तुम भी शाम-सुबू दूर से च[2] हाथ जोड़ता है !

वोच दत्तात्रेय सेठ—

भुलेश्वर नाका ऊपर, करसन सेठ का घर का ये बाजू ।

देसाई सेठ का घर का, बोले तो, वो बाजू ।

वोच जवेरी[3] !...

लखपति जवेरी !

हमेरा दत्तू भाऊ—

पटेल सेठ का भाँडी घसने वाला रामा !

रामा, बोले तो, गणपत भाऊ, तुम भी !

क्या, हम भी !

पण, दत्तू भाऊ को पाँडुरंग हरी झंडी दिखाएले ! हिस्टरी, बोले तो, हिस्टरीच !

एक दिवस की बात,

पटेल सेठ सिनेमाकूँ गयेले !

किसकूँ साथ लेके ? अभी तेरेकूँ मसखरी लगिंगा !

---

१. दिखती थी । २. दूर से ही । ३. जौहरी ।

पाँडुरंगाची शपथ, प्यारे, लछमी बाई कूँ साथ लेके !

लछमी बाई, बोले तो, कोरण ?

तेरे को तो मालूम ही ?

वोच दातून वाली, नटखट पोरी ! वोच, 'म्हारी गली आवजो, रे !'[1] वाली लावनी गाती होती ? उसका छाती का बटन भी, बोले तो, दर-हमेशा उघड़ेलेच ![2] खूबसूरत, बोले तो, होतीच ![3]

परण, किधर पटेल का बाई—शारदा बेन !

एकच 'जोबना' वाली !

किधर पटेल सेठ—नामी जवेरी !

किधर लछमी बाई—'आना मा बे, बे आना मा चार !'[4] का आवाज देकूँ, दातून का लकड़ी बेचने वाली !

परण, पोपट, मुंबई का सेठ लोग का दिल भी एकच क़बूतर ! एकच जासूस ! एकच जालिम !

मुंबई का सेठ लोग—सभी को अपन कई से '—' बोलिंगा ? परण, रुपया में आठ आना, बोले तो, हैच ! घर ऊपर का ख़ीर—वासुंदी कूँ लात मार कूँ बाहर का ऊसल—पाव कूँ दौड़ने वाले !

उधर पटेल सेठ लछमी दातून वालो कूँ लेकूँ 'तीन बत्ती, चार रास्ता' देखने कूँ गयेले । इधर बैठक का तीन बत्ती बुझा कूँ, अन्दर का चार खिड़की बन्द करकूँ—हमेरा दत्तू भाऊ शारदा सेठानी का रूम में घुस गयेला !

सेठानी का मुँह ऊपर क़पड़ा देकूँ, आख़खी रात-भर जशन

---

१. मेरी गली आना रे ! २. उघड़े हुए ही । ३. थी ही । ४. एक आने में दो, दो आने में चार ।

मनाएला ! जिंदगी का मजा लिएला !

वो दिवस, बोले तो, ये दिवस !...

शारदा सेठानी दत्तू भाऊ का वास्ते जाने-जिगर कुरबान करेली ! पटेल सेठ से छुपा-छुपाकूँ, दत्तू भाऊ को रकम दिएली। पीछूँ, आज पटेल सेठ का मंगल-सूत्रकूँ काँडी लगाकूँ, दत्तू भाऊ का घरबार बसाएली !

दत्तू रामा, बोले तो, आज जवेरी !

पण, अपन, बोले तो, कौंबड़ी[1] का माफिक कौंबड़ी ही रह गए ले ! आज, बोले तो, अपन भी दत्तू भाऊ-सरीखाच, सेठ का माफिक जिंदगी आबाद कर सकने कूँ—पण, हमेरी सेठानी को तुम कदी मुंबादेवी का मंदिर कूँ जाते देखा क्या ?

प्यारे, हमारी सेठानी—यशोदा बेन—

जोगन बन गएली !

काहे कूँ ?

हा-हा-हा—

येच, पोपट, बाई लोग का टिरीक !

अपना पंडित केहता होता, "स्त्री चरित्रो, कुत्तो न जाने !"

यशोदा बेन करसन सेठ का शोक में जोगन बन गएली।

हाँथ ऊपर रुद्राक्ष की माला और कमण्डल लिएली !

पण, दिल में, बोले तो, निम्मी का माफिक जोवना !

'जोवना' बोले तो, वो दिवस का वात याद आया !

क्या, वो दिवस बाई हमेरे को जरा-सा पण्णी लेने पर लाफ

---

१. मुर्गी।

मारा होता, पीछूँ खुद अपना पीरू-सरीखा गाल कूँ हमेरे दाँत कूँ दिएली ! अपना'—'को अपना मर्जी से हमेरे'—'से लगाएली !

तभीच-भैय्या जी बोलता होता—

"जोवना को दिन मेरो आने दे, सैंया !"

अपना बाई को भी पीछूँ जोबना चढ़ेला, तो खुद हमेरे से लगा-लिपटी लगाने कूँ ! हम वोला होता, "वाई, भगतन वन जाओगी तुम, पीछूँ हम किसका साथ सोईंगा !"

वाई वोली—"तने शुँ फिकर छे ? तारा माटे तो हूँ, तारीज !"[१]

हमेरी बाई—सेठानी यशोदा बेन—

दिन कूँ, बोले तो, भगतन—

क्या, जोगन !

रात कूँ, हमेरे साथ, निम्मी—

नरगिस—

मोनवर सुलताना—

भैय्या जी पण एकच जासूस !

ठीकच बोलता होता—

"जोबना को दिन मेरो आने दे, सैंया !"

अच्छा, गणपत भाऊ, एक बीड़ी तो पिला, प्यारे !···

१. 'तुम्हें क्यों चिन्ता है ? तुम्हारे लिए तो, मैं तुम्हारी ही हूँ।'

उन्नीस

भुलेश्वर, बोले तो, भुलेश्वर च !

सेठानियाँ, बोले तो, सेठानियाँ च !

आक्खा मुंबई तो अपन भी देखेला नहीं ! पण, भुलेश्वर हमेरे लिए—गणपत रामा के लिए—हाथ ऊपर का चोपड़ी !

एक-एक घर हमेरा देखे ला। एक-एक सेठ को राम-राम किए ला !···

उक्·· उक्···उक्···

किएला से, बोले तो, पिएला का तुक जुड़ता है !

तुक, बोले तो, लावनी—गाणी का जाने-जिगर !

वो, भारती व्यास का गोष्ट हम आप लोग को बोला होता—एक-से-एक टेसदार लावनी, बोले तो, भारती व्यास लिखताच, लिखता ! कईसे ? बोले तो, ऐसेच तुक-ऊपर-तुक मिलाके !

जादूगर सैंया, छोड़ो मोरी बैंया—
बोले तो, क्या ?
सैंया, बोले तो, बैंया—
सैंया का, बैंया का तुक एकच !
तुक, बोले तो, लावनी—गाणी का जाने-जिगर !
सैंया का जाने-जिगर, बोले तो, बैंया—
जादूगर सैंया, बोले तो, करसन सेठ—
करसन सेठ, बोले तो, जशोदा बेन—
जशोदा बेन, बोले तो, शारदा बेन !
शकुन्तला बाई—वसुन्धरा बाई—
वसुन्धरा बाई, बोले तो, कोण ?
हमेरी सेठानी !
देसाई सेठ की बायकोन, बोले तो, वोच !
उक्...उक्...उक्...
पटवर्द्धन पण एकच पोपट ।

अपना बाई का हिस्टरी, अपना सेठ का पोल-पट्टी खोलके चालू पड़ गया ! पटवर्द्धन कोण ? साला, भाँडी—झूठा भाँडी घसने वाला रामा ! रामा लोग, बोले तो, साले हलकट ! हरामखोर ! वेइमान !

जिस पिक्चर कूँ देखेगा, उसी की हिरोईन का फूटो—फूटो, बोले तो, तस्वीर—का पप्पी लेंगा ! अभी सिनेमा का हिरोइन लोग, अपना माँ-बहन-सरीखा । वो लोग का ऊपर बुरी नजर डाले, तो कोढ़ फूटिंगा आक्खा जिसम को । हिरोईन लोग का तस्वीर देखे, तो भगवान पांडुरंग का दर्शन करे का बरोबर !...

तभीच अपन रामा लोग को हलकट बोलता है ! जो सिनेमा देखेगा, उसीका च पर्दा ऊपर पत्थर फेंकिंगा !…

अभी सिनेमा का पर्दा, बोले तो, गणपति बाप्पा का मंदिर-सरीखा ! उसकूं तो, दूरसेच हाथ जोड़ने को—फूल-पाती चढ़ाने को !

पण, पटवर्द्धन, बोले तो, रामा !

रामा लोग, बोले तो, हरामखोर !

जोच पत्तल में खाईंगा, वोच पत्तल में छेद करिंगा !

जिस सेठ का घर ऊपर भूठा भाँडी घसिंगा, वोच सेठ की सेठानी का जोबना भी घसने को देखिंगा ! फोकट खाऊ लोग, सेठ का माल-पानी उड़ाके च सेठानी का मजा भी लूटिंगा ! घर ऊपर का ताँबा-पीतल का भांडी साफ करकूं, सेठानी लोग का जिसम कूं भूठा करिंगा !

सेठानी लोग, बोले तो, अपना माई-बहन-सरीखा !

औरत, बोले तो, औरत च !

उसकूं अपन क्या बोले ?

औरत हाथ ऊपर का खाली चोपड़ी-सरीखा। अभी हलकट मरद लोग उसमें संत ज्ञानेश्वर का माफिक ज्ञानेश्वरी लिखकूं पवित्र बनावे, या वो हलकट भारती व्यास का माफिक तिरछी नजर, पतली कमर का लावनी लिख-लिखकूं गंदा करे !

अभी आप लोग हमेरे को बोलिंगा, हमेरे लोग का कोई ईमान-धरम नहीं। हमेरे लोग में कोई इन्सानियत नहीं। आप लोग हमेरा बाप-सरीखा है; आप लोग अपन को चार लाफा भी मारिंगा, तो अपन आप लोग को क्या कर सकता है ?

अपन गरीब रामा लोग !

तकदीर की हाँडी फूटेली, घर-गिरस्ती को भगवान् पांडुरंगच काँडी लगाएले; पीछूँ आप लोग को अपन क्या बोले ?

आप लोग क्या, गरीव को जोरू को आक्खी मुंबई वाले भाभी बोलते। बोले तो, गरीब की औरत का '—' कापड़ मजबूरी से भी जरा उघड़ा रहिंगा, तो '—' लोग का आँखी, कबूतर का माफिक, उधरच-उधरच जाने को। गरीब औरत का भाऊ-बाप और खसम की जिंदगी कूँ सात-सात दफा कोलतार लगाने को !…

येच क्या इन्सानियत ?

पैसे वाले की बीबी, चौपाटी का रेती का माफिक माल-पानी होके भी, हुसन का जादू दुनिया को दिखाने वास्ते बारीक-से-बारीक, तंग-से-तंग कापड़ पहननेकूँ। ब्लाउज का ऊपर-नीचूँ से जालिम, पंछी-परी लोग का छाती इलाहाबाद का पीरू,[1] काश्मीर के सफरचन्द[2] के माफिक बाहर आने को।

उसकूँ वोले लोग फैशन !

वो लोग बड़ा आदमी !!

इज्जतदार !!!

और अपन मजबूर लोग वेईमान ?

हलकट ?

हरामखोर ?

हलकट होईगा आप लोग ! हरामखोर, बोले तो, सिनेमा का हिरोईन लोग ! डायन लोग गरीव लोग की खून-पसीने की कमाई नंगी टाँग-छाती दिखाकूँ, कमर लचकाकूँ, वो भारती व्यास-सरीखा

१. अमरूद। २. सेव।

हलकट शाहीर लोग का हलकट लावनी गाकूँ मिट्टी में मिलाने को !

मेहनत करके भी, गरीब लोग का माँ-बहन भूख से तड़फने को—

सिनेमा का हिरोईन लोग खाली टाँग दिखाकूँ, कमर लचकाकूँ ऐय्याशी का जिंदगी मजा मारनेकूँ !

सिनेमा का हिरोईन लोग, बोले तो, हरामखोर !

गंदा-गंदा गाणी लिखने वाले शाहीर लोग, बोले तो, साले लोग राक्षस ! हलकट !

अपन गरीब लोग का रहने को, बोले तो, झोंपड़ा भी नशीब नहीं ! जालिम पंछी लोग का डान्स—जोबना दिखानेकूँ, बोले तो, लिबर्टी—मेत्रो—नाज ! पैलेस—स्वस्तिक—पेराडाइज !

लेमिंगटन !

इम्पीरियल !!

पतरावाला सिनेमा !!!...

उक्...उक्...उक्...

पतरावाला सिनेमा, बोले तो, उसी का च बाजू में ताज सिनेमा ! ताज सिनेमा, बोले तो, उसी में च अपना दोस्त विट्ठल !

उसका जिंदगी, उसका हिस्टरी भी एकच !

पण, पीछूँ बोलिंगा ?

सबूर करो !

सबूर का फल मिठाच होता है ! सबूर, बोले तो, अपन भी आक्खी जिंदगी-भर किएले ! पीछूँ जाके आज अपना सेठानी का मेहरबानी से सेठ लोग का माफिकच मौज किएला—

तुक मी, बोले तो, एकच !

मौज किएला का तुक, बोले तो, दारू पिएला !

दारू पिएला, बोले तो, मौज किएला का जाने-जिगर !

दारू पिएला कोण ?

हमेरे लिए, दारू पीना, पेशाब पीना—बरोबरच !

दारू पिया होईगा हमेरा बाप !

अभी सेठानी ने हरा पत्ता दिया होता करकूँ, '—' भर अपन भी पी लिएले, तो कौन से कद्दू में तीर मार दिएले ?

कद्दू, बोले तो, भोपला !

भोपला, बोले तो, हमेरी जिंदगी-सरीखाच !

हमेरी जिंदगी, बोले तो, आक्खी इसीच मुंबई में तेल लगानेकूँ गएली ! तेल में तेल, बोले तो, खुशबूदारच !

खुशबू में खुशबू, बोले तो, अपना छोटा बाई कालिन्दी बेन का सिर में, अपना जाने-जिगर बसंती बाई का साड़ी-सैंडिल में !

साड़ी-सैंडिल, बोले तो···

उक्···उक्···उक्···

ले रे, पटवर्द्धन, बीड़ी माँगना क्या, रे !

बीस

वसन्ती बाई, बोले तो, हमेरी छोटी बाई !

छोटी बाई, म्हणजे, धनी की पोरी[1] !

वसन्ती बाई, बोले तो, हमेरे नौकरी ऊपर जाने से पहिले च दाल-भात चाखेली। दाल-भात चाखेली, म्हणजे, अली-गली के तीन-चार पोरे[2] लोग से लगा-लिपटो लड़ाएली ! लगा-लिपटी का मतलब पूछे तो, आशनाई !

आशनाई, बोले तो, इश्कबाजी !

इश्क, बोले तो, गालिब ने निकम्मा कर दिया ! वरना……

देसाई सेठ, बोले तो, एक च इशकबाज !

इशकबाजी, बोले तो, देसाई सेठ की जिन्दगी !

देसाई सेठ का जाने-जिगर !

---

१. सेठ की लड़की। २. लड़के।

दर-आठवाडिया देसाई सेठ का तरफ से मंदिरों में, बोले तो, डलिया भर-भरकूँ पूरी-लड्डू गरीबों का वास्ते !

गरीब, बोले तो, भिखारी लोग !

ये लोग का भी जिन्दगी, बोले तो, जिन्दगी च !

एक पूड़ी, एक लड्डू का वास्ते—

सुब्ह पाँच बजे से सात-आठ बजे तक मंदिर का आगे लाइन लगा के रहने को। एक पूड़ी, एक लड्डू का वास्ते तीन-तीन कलाक इन्तजार—सबूर करने को ! सबूर भी, बोले तो, आखरी जिन्दगी-भर !

ये च सबूर का, येच भीख माँगने का—भीख का टुकड़ा का वास्ते इन्तजार करने का आदत गरीब लोग की जिन्दगी को गट्टर में डालेला ! गट्टर, बोले तो, नरक !

जिसम से कमजोर सेठ लोग, जो रात कूँ अपनी च बाई को नहीं सँभाल सकने को, नरम-नरम गद्दा ऊपर मजा करने को, खीर-मस्का, कबाब-आमलेट का सिवा बात नहीं करने को; बिजली का पंखा-नीचूँ पण जोर-जोर से साँस लेनेकूँ, हाँफने कूँ—

और, बोले तो, ये च मुंबई में हट्टा-कट्टा गरीब लोग भीख माँगने को—भीख ऊपर भी गुजर नहीं होने को ! पीछूँ कच्ची-कच्ची उमर का छोकरी लोग पिल-हाउस, कमाठीपुरा, फारस रोड आबाद करती ! कच्ची-कच्ची उमर का छोकरा लोग या तो दारू सप्लाई करने को, या वाचमैन पठान लोग से······लखनऊ से आयेले, भिंडी बाजार आबाद करेले '—' लोगों से······

अभी आप लोग च बोलो, क्या ये लोग किसी का भाई-बहन नहीं ? ये लोग इन्सान नहीं ? ये लोग का वास्ते, ये लोग की जिन्दगी का वास्ते—इन्सानियत का चोपड़ी ऊपर कोई कायदा-

कानून, कोई इन्तेजाम नहीं ?

सरकार, बोले तो, हमेरी आई-बाप !

नेहरू जी, बोले तो, हमेरे राम राजा !

अपना देसाई-चव्हाण साहिब भी बोले तो लक्षमण-भरत-सरीखे !

हम गरीब लोग के माँ-बाप ! कासम भाई का माफिक बोले तो, परवरदिगारे-आलम ! बादशाहे-नियामत ! हुजूरे वाला !

पण, सच्ची बोले तो, सबके-सब एकदम कसाई च !

नेहरू जी, बोले तो, राम-सरीखे—

लेकिन उनकी च राजधानी में इन्सान का जिन्दगी कुतरा का माफ़िक गट्टर में जाने को—गट्टर, बोले तो, नरक !

नरक, बोले तो, ये सरकार पण नरक में च जाईंगा !

हम झूठ बोलिंगा ! हमेरा बाप झूठ बोलिंगा !

पण, संत कवि तुलसीदास तो झूठ नहीं बोलिंगा ?

वो च महाकवि तुलसीदास केह गयेले—

जासु राज नहिं प्रजा सुखारी...ई···ई···ई···

सो नृप अवसि नरक-अधिकारी !!···ई···ई···ई···

वो च संत तुलसीदास का हिसाब से बोले तो—सरकार का में बार आना लीडर लोग नरक च आबाद करने को !

ये च तुलसीदास बोले ले !

ये च रामायण बोले ला !!

ये च अमेरी आत्मा पण बोलेली !!!

इक्कीस

आत्मा, बोले तो, कोण !

ये च—जाने-जिगर !

पहले आत्मा, बोले तो, पीछूँ परमात्मा !

आत्मा का तुक़ बोले, तो, परमात्मा !

परमात्मा का जाने-जिगर, बोले तो, आत्मा !

आत्मा का वास्ते च लोग-बाग एक-से-एक पाप, एक-से-एक पुण्य कियेले ! पीछूँ पाप-पुण्य, बोले तो, एक डालो के दो फल !

एक बाजू, गरीब लोग का जिन्दगी रखकूँ,
एक बाजू, सेठ लोग का जुलम रखकूँ
बोले तो, मतलब ये च !
मतलब, म्हणजे, इन्सान का ज़िन्दगी !
ज़िन्दगी, बोले तो, सबकी एक सरीखी च !

हमेरे को दो आँखी, तो देसाई सेठ को चार आँखी नहीं

गरीब को दो टाँगी, तो सेठ को चार किवरकूँ ?

पण, गरीब को, बोले तो, आक्खी जिन्दगी-भर सजा !

सेठ लोग को मजा-च-मजा काहेकूँ ?

मजा-मौज देसाई सेठ भी खूब किएले !

आक्खा भुलेश्वर में देसाई सेठ नम्बर एक !

पण, नियत-ईमान, बोले तो, कुछ नहीं !

भिखारी लोग का पोरी लोगको भी, घर में भाँडी घसवाने का बहाना बनाकूँ, बुलाने का—पीछूँ बेड-रूम में ले जाकूँ......

दिल, बोले तो, देसाई सेठ का एक च ! दर-हमेश खुद मजा मारकूँ हरेक पोरी को हमेरे को सौंपेले कि 'ले रे गणपत, तेरा तबियत भीतर करले !'

पण, अपन भी एक च जासूस !

एक च पोपट !

अपन तो गरीब पोरी लोग का जिसमकूँ हाथ भी कदी लगावे नहीं। काहेकूँ, बोले तो, वो गरीब पोरी लोग हमेरे लिए हमेरी गंगा बाई-सरीखी च ! एक दिवस की गोस्ट बोलिंगा। गोस्ट, म्हणजे, कथा-कहाणी।

देसाई सेठ एक पोरी लाएले।

पोरी, बोले तो, जोबना वाली।

पण, उसका आँखीकूँ कोई देखे—ठीक हमेरी गंगा बाई सरीखी च, ग़म में, बोले तो, दर्द में डूबेली। दातुन बेचती होती। देसाई सेठ उससे दातून घर ऊपरच मँगावे। वो दिवस बोले—"जरा ऊपरना

रूम मा लईजा, हुँ हमणाज आवींश[1] ।"

पोरी थी गुजरातन । समझ गयेली ।

दातून लेके वो ऊपर गई, क्या, पीछूँ-पीछूँ देसाई सेठ भी ऊपर गए । अपन किसी को क्या बोले ? देसाई सेठ ऊपर से वसुन्धरा बाई, अपनी औरत, को नीचे भेज दिएले । वसुन्धरा बाई का देसाई बाबू का ऊपर कोई जोर च नहीं । उनके समोर च[2] देसाई बाबू बाहर का औरत लोग को पलंग ऊपर सुलावे ।

वो दिवस हमेरी सेठानी का आँखी में पण आँसू !

औरत का आँसू, बोले तो, जादूगर का तीर !

उधर देसाई बाबू उस गुजरातन पोरी को अपना बेड-रूम में लेके गएले । काहेकूं, सोचे तो, अपन जानता होता—ईशक-मोहबत का दास्तान, सोचे तो, अपना दिल को भी रँग आवे । हमेरे सामने, वो दिवस वसुन्धरा बाई—हमेरी सेठानी !

जोबना, बोले तो, उसको भी भरपूर आयेला !

ऊपर जोर से देसाई बाबू पोरी की पप्पी लिए, तो क्या हमेरे से भी नहीं रहा गया । हम पण सेठानी को पकड़कूं पप्पी ले लिया होता ! सोचता होता, ये बाई पण पटवर्द्धन का यशोदा बेन का माफिक लाफा मारेगी । पण, हमेरी बाई खुद हमेरे से चिटक गएली । पीछूँ हम सेठानी को किचन रूम में लेकूं गया । औरत का साथ मरद—बोले तो—बेगम का साथ बादशा !

बेगम का ऊपर बादशा मारे तो ?

बेगम, बोले तो, तर !

खुश !

---

१. दातून तुम ऊपर के कमरे में ले जाओ, मैं अभी आया । २. सामने ।

बाईस

पीछू जभी देसाई सेठ उस पोरी को लेके नीचूं आए, वोच टैम ऊपर अपन भो सेठानी का आखिरी पप्पी लेकूं बाहर आया होता। देसाई सेठ हमेरे को बोले, "इसको लेके अभी तुम किचन-रूम में जाओ। अपने साथ सुलाके, पीछे के रास्ते ही बाहर कर देना!"

उधर सेठानी भीतर से हो ऊपर पहुँच गएली। उसकी गीली साड़ी, बोले तो, उधर च। उधर च हमेरे वास्ते एक पाँच का हरा पत्ता भी रखेला। अपन उस पोरी को वो साड़ी भी दे दिया, वो र। पत्ता भी। पोरी बोली—"पैसा तो हुँ सेठना पासे थी लई लीधा छे! हवे तमे मारा साथ हुई जावो, पछी जो तमे मने पैसा आपशो तो हूँ मारा बाल-बच्चा ना माटे लई लईश!"

उसका हिस्टरी भी अपन तभी पूछा होता।

हिस्टरी, बोले तो, हिस्टरी च!

एकच!

उक्...उक्...उक्......

तेईस

पगली का जीवन कितना पगला होता है !

पागलपन भी अपने आप में कितना रहस्यमय, कितना मुखर अनुभूतिपूर्ण होता है ! पागलपन की स्थिति तक पहुँचने के लिए, मनुष्य को जीवन जीने की कितनी कंकरीली-पथरीली-गहरी खाइयों घाटियों से गुजरना पड़ता है—अंतर्द्वन्द्व के कितने प्रशस्त-विराट मरु-प्रदेश में बिना 'थैली-गद्दी' के ऊँट की तरह भटकना पड़ता है !

नीलाम्बरी से कोई पूछे तो !

चौबीस

मेसर्स सेठ वालजी, लालजी 'फाउण्डर ऑफ गाठिया एण्ड पापड़ी-इन बॉम्बे !' के रूप में प्रसिद्धि-प्राप्त हैं ! बम्बई के हर मशहूर नाके पर उनका एक होटल अवश्य है, जहाँ की विशेष चीजें गाठिया-पापड़ी और भजीया हैं !

गाठिया—पापड़ी—भजीया और भेल—

गुर्जरों की रसवन्ती जीभ इन्हीं 'चारों धाम' की तीर्थ-यात्रा के लिए विकल-विह्वल रहती है। भेल गुजराती-पारसी जनों की सर्वाधिक प्रिय वस्तु है। गाँडा भेल वालों की दुकानें इन्हीं की बदौलत रोशन रहती हैं।

भेल में इतनी चीजें चाहिए—

कुरमुरा, चिवड़ा, सेव, पूड़ी, आलू-प्याज और तीन-चार किस्म की चटनियाँ—!

गाँडा भेल के अनन्य प्रेमी सेठ वालजी के एक-मात्र पुत्र सेठ लालजी का निर्माण भी भेल की तरह हुआ था, शायद !

पल्लव, चोल, शाक्य, कम्वोज, चौहान, राठौड़ और शेख-सैय्यदों के रक्ताणु लालजी के शरीर तक चले आए हैं, पिछले हजार पाँच सौ वर्षों के इतिहास और वेश-क्रम में, ऐसी बात सेठ वालजी श्रीमती वालजी से कभी-कभी कहा करते थे !

इन सवके रक्ताणु सेठ लालजी के शरीर में पाए जा सकते हैं या नहीं, श्रीमती वालजी को कुछ जानकारी या सरोकार नहीं, पर उनके घर दूध की वाल्टी लाने वाले भैय्या जी, जिला खैरावाद वाले के वीर्य से लालजी का निर्माण हुआ है—सेठ वालजी के 'रक्ताणुओं' से नहीं—इतना श्रीमती वालजी खूव जानती हैं !

अपने मुर्दार जिस्म और लालजी की हृष्ठता के देख-देख, वालजी अपनी कलाइयों को अपनी अँगुलियों से नापते रहते हैं, और एक काली स्याही-सी उनके होंठों पर पुत जाती है, और भैय्याजी की राम-राम को वह दातून करते वक्त थूककर, राह चलते खाँसकर, और वीवी के सामने 'दूध गरम' करने का आर्डर देकर टाल देते रहे हैं।

पच्चीस

नीलाम्बरी, सेठ लालजी की बहू !

जामनगर से बम्बई तक का सफर तय किया शादी ने, पर वर-वधू के बीच का रिश्ता 'हिनोज देहली दूरस्त' बना रहा !

सट्टा बाजार की कमाई ने पिल-हाउस पर गेंदा पठान की बिल्डिंग में चूना-वार्निश करवाया ! गेंदा पठान ने अपनी रमजानी, गुर्बानी और सुलेमानी को लालजी को सौंपकर, पिल-हाउस पर 'रमजानी रेस्टोरेण्ट', फारस रोड पर 'गुर्बानी रेस्टोरेण्ट' और कमाठीपुरा में 'सुलेमानी रेस्टोरेण्ट' की संस्थापना की !

लालजी सेठ रमजानी, सुलेमानी और गुर्बानी पर कुर्बान हो गया ! नीलाम्बरी के प्यार की घाटी में पंछी न चहका, अरमानों की भट्टी में कोयला न दहका—प्यार-खुमार की हर कशिश 'हिनोज देहली दूरस्त' रह गई !

जिन्दगी जब कहीं एक-केन्द्र बिन्दु पर आकर थम जाती है, गंदी हो जाती है। नीलाम्बरी की सारी आस्था एक दिन इसी केन्द्र बिन्दु पर आकर थम गई—'सेठ ने हुं गमती न थी!'[1]

जब कभी, नीलाम्बरी बोली तो सही।

पर, पीपल-पत्ते का पानी!

"केम, क्याँ जाओशो, हवे रात ना अगियार वागे!"[2]

"तारीबा ने '—' माटे!"[3]

—और रात सट्टा बाजार की काली कमाई पर थूक देती।

जब कभी, नीलाम्बरी कहती—"केम? तमे तो मारा साथ बोलता न थी?"[4]

लालजी सेठ चांडाल की तरह हँस देता—"मने घेर ऊपरनो मुर्गी नो शाक भावतोज न थी!"[5]

और नीलाम्बरी रात हो जाती!

और यों ही—

एक हजार-एक सौ-सत्तानवे रातें आईं, गईं!

नीलाम्बरी महाकाल-मन्दिर की देवदासी-सी अक्षत-यौवना ही रही—जीवन का इक्कीसवाँ वर्ष न पंछी-सा चहका, न फूल-सा महका!

जो चिड़िया न चहकेगी,

जो फूल न महकेगा,

---

१. पतिदेव मुझे पसन्द नहीं करते। २. क्यों, अब रात के ग्यारह बजे कहाँ जाइएगा? ३. तेरी माँ को '—' लिए! ४. क्यों, आप तो मेरे साथ बोलते ही नहीं? ५. मुझे घर की मुर्गी का शिकार अच्छा नहीं लगता!

सुरीली आवाज चीख, दबी ही सही, में बदल जाएगी न ?
सुगन्ध दुर्गन्ध में, कभी तो, बदल ही जाएगी ?
पंछी को बिना चहके यदि जीना पड़े,
फूल को बिना महके यदि झरना पड़े,
नीलाम्बरी की जिन्दगी कुछ योंही-योंही-सी !

घाव जो शरीर पर लगते हैं, यदि नासूर न हुआ, यथा अवधि भर ही जाते हैं, फेफड़े में लगे कीटाणु कहाँ जल्दी मरते हैं ? व्यथा के कीटाणु जब भावनाओं, अनुभूतियों और आकांक्षाओं के फेफड़े को छलनी-छलनी कर देते हैं, मवाद तो दूर, आँसू भी बाहर टपकने बन्द हो जाते हैं। और घाव के अन्दर रहने वाले मवाद से, आँख के अन्दर रहने वाले आँसू जीवन के लिए ज्यादा विषैले, ज्यादा घातक होते हैं !

नीलाम्बरी के जीवन को यह विष व्याप गया।

गहराई तक।

विष का उपचार वमन है तो—

पर, नीलाम्बरी ने विष-वमन विलम्ब से किया। उसका शील, उसका नारीत्व उसे विष-वमन करने से रोकता रहा—पर वह शंकर तो न थी न ?

वह पगली हो गई ?

उसका पागलपन भी कैसा—अपने-आप में, न्याय की तुला पर पीड़ा की चीत्कार करती आत्मा, वेदना को रुला-रुला देनेवाली आँखों से—

रत्ती-भर भी वजनी नहीं !

पर, नीलाम्बरी हुई पगली ही तो !

और जब कभी सेठ घराने के मालिक या मालकिन को उल्टी (कै) हो जाती है, उनका अपना पालतू कुत्ता उसे कदापि नहीं चाटेगा न ?

पर, मुहल्ले के, गली के दरिद्र कुत्ते उस पर चारों ओर से झपट पड़ेंगे ?······

नीलाम्बरी भी जब सेठ-सेठानी की लावारिश-कै-जैसी हो गई, बालजी के घराने में जूँ नहीं पड़ी, नहीं रेंगी—महालक्ष्मी होटल, जो सेठ बालजी द्वारा ही संस्थापित था, के रामा लोगों के लिए अलभ्य-प्रसादी बन गई !

अतृप्त यौवन बगैर दाँत का साँप नहीं होता, जो मदारी के इशारों पर नाचे। वह आकर्षण की पिपरी अपने होंठों पर लिए फिरता है !

नीलाम्बरी की यौवन-पिपरी बजी तो,
किन्तु,
होटल के रामा लोगों के लिए जितनी सुरीली थी,
मनमोहिनी थी,
बालजी घराने के लिए—
उतनी ही फटे बाँस की !

छब्बीस

गूँगा यौवन, नाग-मणि-सा होता है !

उसकी सांकेतिक-भाषा बड़ी मुखर होती है।

उसके बहके कदम उमर खय्याम की रूबाइयाँ होते हैं !

नीलाम्बरी के बहके कदम बालजी-घराने के लिए 'अज्ञेय' के 'बावरा अहेरी' थे, तो बालजी घराने के भाँड़ी-घिस्सू[1] रामा लोगों के लिए 'बच्चन' की 'मधुशाला' थी वह।

यों सेठ बालजी जानते थे—

घृत-कुम्भ समानारी, तप्तांगार समः पुमान।
तस्माद् घृतंच, वह्निच नैकत्र स्थापयेद् बुधः॥

पर, उन्हें क्या पता, उनका 'कुलांगार' लालजी रहमानी, सुलेमानी और गुर्बानी के लिए दिया-उजेला है—किन्तु नीलाम्बरी

---

१. बर्तन घिसने वाला।

लिए तले-अँधेरा !···पठानी-त्रयी के लिए होमाग्नि है, जो 'घृत' से और प्रज्वलित होती है, पर नीलाम्बरी के लिए तुषानल है !

इसके अलावा वालजी 'तस्माद् घृतंच, वह्निंच' को विसर गए, रामा दगड़ू का घर में पानी भरने को आना उन्होंने दूर की आँखों से देखा।

बालजी सेठ की आँखें भी दूरवीन थीं।

पर, उनमें जो 'लैन्स' थे, उनसे बड़ी चीज छोटी दिखाई देती थी—छोटी चीज बड़ी नहीं !

लालजी सेठ 'तड़ा माशे, ख्वार माशे' के देश की रूप-त्रयी में विसुध पड़े थे, नीलाम्बरी की उन्हें कोई गरज न थी !

लालजी बम्बई की मेल-सा चटकदार था, लोक-लाज, मर्यादा या कर्तव्याकर्तव्य का उसके लिए कोई मूल्य न था। एक दिन उसने नीलाम्बरी की लटी को वीभत्स हास्य से विखेरते हुए, कह ही दिया था—"रात्रे अहिं रहीने हुँ शुँ करूँ ? हुँ तो द्वारिका नो करसन जेवो; भिन्न-भिन्न उपवनो ना भिन्न-भिन्न पुष्पो ना रसिया भ्रमर ! तारा माटे मारो शुँ उपयोग ? तारा मांटे तो होटलना रामा लोको हुँ धरी मुकेला छे, ए लोको ना पासे'—' ले !"[1]

और नीलाम्बरी के मानसाकाश में सतीत्व के प्रति आस्था के रहे-सहे बादल भी उपेक्षा और अपमान के उस प्रचंड वायु में छितरा-

---

१. "मैं रात को यहां रह के क्या करूँ ? मैं तो द्वारिका के कृष्ण-जैसा विभिन्न उपवनों के विभिन्न पुष्पों पर मँडराने वाला रसिया भ्रमर ! तेरे लिए मेरा उपयोग ही क्या ? 'तेरे लिए' मैंने होटल में रामा लोग रखे हैं, उन्हीं से '—' ले !"

छितराकर, लोप हो गए।

कगारों के ढह जाने पर, नदी को दिशा बदलते बेर नहीं लगती——और, पति का प्यार छिन जाने पर, नारी को !

नीलाम्बरी ने दूसरे ही दिन दगड़ू से वेणी लगाने के लिए कहा। हमेशा चार कदम दूर रहने वाला दगड़ू उस दिन वेणी के फूलों की महक से सुवासित हो गया।

अलभ्य के चरण-स्पर्श का आनन्द गौरी-शंकर की चोटी पर विजय पाने से कम नहीं।

नीलाम्बरी की वेणी लगाने के चार क्षण, दगड़ू के लिए, सुखानुभूति के चार कल्प हो गए।

"इधर से जरा कस के गाँठ मार !"—कहते हुए, सेठानी नीलाम्बरी यों मुड़ी थी, कि दगड़ू के हाथों में उसके कोमल कपोल यों आ गए थे, जैसे बीच बाजार में भूखे कुत्ते की पूँछ पर पाँव पड़ने से किसी गूजरी की दही-हाँडी फूट गई हो !

पर, दगड़ू इन्सान-नस्ली था !

कुत्ता जल्दी दही चाटना शुरू कर देता है—

दगड़ू सोचता रह गया, इन कपोल-किसलयों को थामे भी रहे, या नहीं ? उसका नौकर-संस्कार पालतू सिंह-शावक था, जो शिकार पर जल्दी ही नहीं झपट पड़ता, पर खाने की नियत पर काबू भी नहीं रख पाता, शिकार से नजर नहीं फेर पाता !…

इस स्थिति को दगड़ू की बिरादरी में 'बिजली का करेण्ट' कहा जाता था !

'बिजली के करेण्ट' की स्थिति से, दगड़ू तब सावधान हो पाया, जब नीलाम्बरी अबोली ओट हो गई।

भूखे शेर की दृष्टि बड़ी तेज, बेधक होती है—

दगड़ू ने देखा, याद रहा, सेठानी के कपोल इतने आरक्त कभी नहीं हुए थे !

सताईस

उस दिन,

दगड़ू रामा ने दारू पीने का आमंत्रण ठुकरा दिया था।

क्या कुछ उसने सोचा था, वह जाने और उसकी आत्मा।

इतनी-सी बात थी, फूलों की दुकान में उसकी नजर बढ़िया-से-बढ़िया 'वेणी' खोजती रही, ठीक उसी तरह—जैसे बम्बई के अधिकांश कवि सेठ-पुत्रों की शादियों में बँटने वाले रूमालों में छपने के लिए बढ़िया-से-बढ़िया मंगल-छंद खोजते हैं।

भूषण-चन्द बरदाई के वंशज नपुंसकों की औलादों के लिए मंगल-छंद लिखते हैं—

तो, दगड़ू को कोई क्या कहे ?

वह गीदड़ था, पर शेरनी के कपोल चूमने की कल्पना तो करता था ? उन शेरों को कोई क्या कहे, जो शेरनी को माँद में गीदड़ों से

काम-वासना शान्त कराते छोड़, बकरियों को चूमने-चाटने दौड़े !

नीलाम्बरी का गात दुहरा हो गया।

पुरुष-संस्पर्श से वंचिता, मुकुलित-मना दर्पण निहारती रह गई वह। दर्पण वह रोज देखती थी, दर्पण उसने उस रोज भी देखा—

पर, काँच बदल चुका था !

पर, पकवानों की गंध-मात्र पा लेने से क्षुधा शान्त नहीं हो जाती ! वह मन को मुग्ध करती है, पर तृप्त नहीं कर पाती—बुभुक्षा को और संवर्द्धित कर देती है।

नीलाम्बरी का मन उस संस्पर्श को पाकर, केवल एक टुकड़ा गोश्त पाई शेरनी-सी बिफरती रह गई। वह सोचती रही बहुत-कुछ, पर जब दगड़ू पानी भरने आया—वह उसकी ओर ताकने में भी साँसों को जोर से चलता महसूस करने लगी।

इतना बड़ी मुश्किल से कहा—"ए, एक गिलास पानी मुझे पिलाना !"

इस 'ए' की ध्वनि ने दगड़ू के मन-मोदक में अंकित 'ए' को 'एस' तक पहुँचा दिया ! उसे लगा, अगर वह कुम्भज ऋषि होता, 'आचमन' में ले सप्त-सिन्धु से नीलाम्बरी सेठानी को आकण्ठ पूर देता !

पर, लाया वह पानी एक गिलास ही !···

बम्बई के उस कंगाल की भाँति, जो रात-भर राज-गद्दी पर बैठे रहने का सपन देखने का प्रयास करता है, पर सुबह 'सिंगल चालू' के साथ बासी पाव ही खाता है !···

"नल का पानी नहीं···," नीलाम्बरी बोली।

"मग, कुटचा पाणी आणू मी, सेठानी ?" दगड़ू बोला।

"पानी की भी तो कई किस्में होती हैं !"—नीलाम्बरी के सुनील नयन मटक ही गए। पर, इशारा उसने खिड़की में रखी सुराही की ओर किया।

दगड़ू के सुराही तक पहुँचते-पहुँचते,

नीलाम्बरी सेठानी की सुराहीदार गर्दन में कितने बल आए-गए। छाछ-सी मथी जाती भावनाएँ, उद्वेग-उत्तेजना का नवनीत नयन-कलशी-माथे तिरा ही जाती हैं।

दगड़ू पानी लेकर लौटा सही,

पर, मन की आग जो भड़की, उसे न दबा सका।

गिलास देते, जाने-अजाने, उससे सेठानी का हाथ दब गया, तो सेठानी नीलाम्बरी ने 'हट्ट' कह दिया। दगड़ू को लगा, इस 'हट्ट' में सेवड़े का जादू है, और उसने सेठानी के साथ जो-कुछ किया, उसे उसकी बिरादरी में 'जिस्म कूँ मसल के पप्पी लेना !'—कहा जाता था !

गणपत के शब्दों में—

"पप्पी, बोले तो, चुम्बन !

म्हणजे 'किस' !

'किस' का 'नरगिस' का तुक, बोले तो, एकच !

किस, म्हणजे, 'नरगिस' का जाने-जिगरं !

आत्मा-परमात्मा, बोले तो, येच !

एकच !......"

अट्ठाईस

जिसमकूँ दबाकूँ पप्पी लेने की बात आक्खी[1] बिरादरीकूँ मालूम पड़ गएली ! बिरादरी में एक-से-एक जासूस ! आक्खी मुंबई का पानी च ऐसा जालिम । कलेजे ऊपर जवानी का कीड़ा-करकट लोग खुजली मारने को । खुजली, बोले तो, मदमस्त जवानी !

जालिम जवानी !...

कासम भाऊ का हिसाब से, बोले तो, कातल जवानी !

'कातल जवानी' का तुक, बोले तो, सेठानी !

सेठानी-में-सेठानी, बोले तो, कोण !

नीलाम्बरी च ![2]

नीलाम्बरी का दगड़ू, बोले तो, जाने-जिगर !

ये च आतमा, परमातमा !

---

१. सारी । २. नीलाम्बरी ही ।

पण, बिरादरी के लोग, साले जालिम !

साले लोग दगड़ू को पट्टी पढ़ानेकूँ—"काय, भाऊ, तुमी एकटा मजा छेऊँ नये ! काय, नाहोंतर तुमाला भारी पड़ेल, इकड़े राहायला[1] !"

दगड़ू, बोले तो, एक च डरपोक।

बिरादरी के लोग 'बण्डल' ठोक दिएले, क्या, साला अपना हिस्सा नहीं करिंगा, तो लाल जी सेठकूँ बोलके, भत्ता खाने वड़ी बिल्डिग में भेजने को !......

इनसपेटर दाँडेकर, बोले तो, लाल जी सेठ का जाने-जिगर !

अपन होवे, तो क्या, अभी आप लोग बोलिंगा, 'गणपत भाऊ 'बण्डल' मारता है !'—पण, अपन तो सेठानीकूँ लेके सीधे सातारा, भी चल देता।

पीछूँ लालजी सेठ, इनसपेटर दाँडेकर क्या हमारा घंटा उखाड़ता था ? पण, भागकूँ किधर जाते थे ? इनसपेटर दांडेकर सरकार का जमाई। उसका हाथ में आक्खी मुंबई का 'पावर' !

जिसकी माँ-बहन का चाहे इज्जत ले लेवे।

सरकार का राज ऊपर, माँ-बहन लोग का इज्जत, बोले तो, इलाहाबाद का पीरू-सरीखा ! अपना माँ-बहन लोग, बोले तो, आक्खी मुंबई में।

अपन को तो नीलाम्बरी सेठानीकूँ देखकूँ रहम आवे।

होटलों के रामा लोग उसका जिसमकूँ कापूस[2] का माफिक

---

१. "क्या, भैया अकेले ही मौज मत करना। नहीं तो तुम्हे यहाँ रहना मुश्किल हो जाएगा !" २. रुई।

धुन दियेले ! मस्का का माफिक जिसमकूँ भजीया-सरीखा कर दियेले।

अपन रामा लोग, बगैर पट्टा-जंजीर के कुतरे।

कोई परण कु-इलम अपन लोग से छुटेला नहीं।

राण[1] लोग के यहाँ से गरमा-परमी-सरीखा हलकट रोग जिसमकूँ लगाकूँ लाने को। पीछूँ वोच हलकट रोग लेकूँ दूसरा माँ-बहन लोग के साथ सोने के।

गुनाह, बोले तो, ये च !

नीलाम्बरी सेठानी परण अमेरे हलकट रामा लोग के गुनाहों से बरबाद। कासम भाई का माफिक बोले तो, नाशाद जिंदगी ! पीछूँ गएले पंधरा (पन्द्रह) बरस के अन्दर नीलाम्बरी कूँ तीन बच्चे हुएले।

खुद सेठानी, बोले तो, दगड़ू का घर-बार जाकूँ पीछूँ मर गएली ! बच्चा लोग, अनाथाश्रम-ऊपर। दगड़ू गट्टर का गट्टर में च ! रहमानी होटल में तंदूर-ऊपर !

तंदूर का तुक, बोले तो, मजबूर !

मजबूर, बोले तो, कोरण ?

नीलाम्बरी सेठानी परण,

गरीब रामा लोग परण,

दोष अपन किसकूँ देवे ?

बरबादी, बोले तो, ये च गरीब की जिन्दगी का जाने-जिगर !

आत्मा-परमात्मा एक च !

जाने-जिगर का तुक क्या—

वो चली किधर ? वो चली किधर ?

पीछूँ, अपन इस बखत किधर कूँ जा रयेला है ?

---

१. वेश्या।

अपना भी फ़रमाइए, बोले जो. एक य क़ातिल !

फ़ौरन भाई बोलता होगा—

“याद जब आती है, बिना लिए आती है—

क्यों नहीं आएगा खुद भी. जब कभी बुलाएंगे ?”

शेर का मतलब इतना था—याद कमज़ोर होने जो. पीछे अं-
अ: से अन्धा की तरफ़ कलम ले जाने के।

कलम-मैं-कलम, बोले तो. शाहिद भारती स्वास का—

खुद दारू पीऊँ,

हमेरे वास्ते पेशाब बनावे !........

पेशाब का नाम इधर य अपने को हस्ती आता है।

हह.....हह.....हह......

उन्तीस

पेशाब,

बोले तो,

आप लोग बोलेगा, कईसा हलकट जबान मुँह ऊपर लाता है ! पण, अपन आप लोग से ये च विनती करता, क्या, तोंड़[1] देखके '—' का रुतबा नहीं देने को ? बुजरग लोग बोलते होते, कैसी पेशाब का पैदाइश है ! इसका मतलब आपको बोलिंगा, तो कइसी वंश-परम्परा में पैदा हुआ, ये च ! पीछूँ पेशाब शब्द मुँह ऊपर आवे, तो गधी का '—' का माफिक मुँह काहेकूँ बनाने के ?

पेशाब का तुकबोले तो, नबाब !

कासम भाई को अपन लोग डेढ़ नबाब कहते होते ।

कलंदर का गाँठी जरा मजबूत होवे, तो गबरडीन का सूट और

---

१. मुँह ।

कबाब से नीचूँ बातच नहीं करे। डेढ़ नबाब का मतलब ये च।

रफ्ता-रफ्ता इलाहाबाद का पीरू, बसई का केला पकता है। रफ्ता-रफ्ता च जिन्दगी। रफ्ता-रफ्ता च दरेक चीज याद आता है। अपन भी ये हिस्टरी रफ्ता-रफ्ता च कह रयेला !......

पीछू आप लोग सबूर[1] नहीं करिंगा, तो अपन आप लोग का बाप का नौकर नहीं है। अपना च थूक, अपना च '—' हम सीखेला च नहीं। झूठ बोलिंगा, हमेरे को चार लाफा मारना। क्या, आप लोग अपना माँ-बाप का जगह पर! आप लोग दश जूती भी मारेगा, हम हाथ च जोड़िंगा।

पण, अपन कहिंगा तो ये च—सबूर का फल मीठा च होता है। वो हाजी मलंग शा का दरबार देखके अपन आएले। उधर च एक बाबा अपन को बोले होते, "बेटा सब्र करेगा......"

अपन को गुस्सा आएला। कड़काई का हालत ऊपर होता। अपन बोल दिया—"बाबा, सबूर करता-करता, हमेरी हालत भिंडी बाजार के गफ़ूर-सरीखी हो गई। अभी क्या आक्खी जिन्दगी-भर बाबाजी का घण्टा सबूर करे ?"

बाबा हमेरे जबाब से खुश......

अपन को बोच बाबा 'डबल' का आँकड़ा[2] दिएले। हमेरे पास वो दिवस फकत एक च रुपया होता। आठ आना बाबाजी ले लिए। आठ आने का अपन आँकड़ा लगा दिया।

चौके से पंजा !—

---

१. सब्र। २. बम्बई में सट्टा खूब खेला जाता है। 'ओपन-क्लोज' दोनों फीगरों को 'डबल का आँकड़ा' कहते हैं।

येच पंजा वो दिवस हमेरा सिर गंजा कर दिया। बावा जी का '—' में हस्ती का '—' मारिंगा, काहेकूँ आँकड़ा आएगा! उलटा हमेरा चाय-पानी का बांदा हो गएला।

० ० ०

जादूगर सैंया, छोड़ मोरी बैंया—

सुलेमानी होटल का ख्वाज़ा भी, बोले तो, एकच बोगस।

साला, दुकान बन्द करते टैम दररोज येच गाणो लगाएगा। ये टैम ऊपर तो 'पकड़ मोरी बैंया' लगावे तो मजा। येच टैम ऊपर आक्खी मुंबई वाले जोरू का हाथ पकड़ कूं सीना-छाती ऊपर दाबते।

हा…हा……

हो…हो……

लगा-लिपटी, प्यार-मोहोवत का दास्तान बोलते बखत अपने को भी आनन्द आता है। पण, पीछूँ थोड़ी देर में सुबू[1] हो जाईगा। सुबू-सुबू अपन भगवान् का नाम लेंगा।

अभी हिस्टरी जरा जलदी खतम करने के।

हिस्टरी का तुक, बोले, कबूतरी!

भुलेश्वर का सेठानी लोग पण, कोई-कोई, कबूतरी का माफिक। फुर्र से इधर कूँ, फुर्र से उधर कूँ।

जिस पोरी का अपन हिस्टरी बोलता होता; वो पोरी, साहिवा, जिसकूँ देसाई सेठ घेर ऊपर लाए होते—नीलाम्बरी सेठानी की दीकरी[2] जमुना। दातून बेचकूँ अपनी गुजर करती होती।

पटवर्द्धन को क्या मालूम?

---

१. भोर। २. लड़की।

येच जमुना पीछूँ 'महाराष्ट्र नाट्य मंडली' की बाई नटी शकुन्तला बाई बन गएली। वोच शकुन्तला, जिसका ऊपर पटवर्द्धन के सेठ अपनी आक्खी जिन्दगी कुरबान कर दिएले।

औरत का हुसन, बोले तो, ऐसा च जाने-जिगर।

कोई-कोई, सेठानी लोग का जोबना, ऐसा च जालिम!

कासम भाई बोलता होता—कुरबान जाऊँ!

उसका शेर-में-शेर, बोले तो, 'जोबना को दिन मोरो आने दे, सैंया!

जादूगर सैंया,
छोड़ो मोरी बैंया,
अब घर जाने दो—
हो गई आधी रात!'

कुरबान जाऊँ!

कुरबान कोई जावे तो अपना वसुन्धरा बाई का ऊपर।

वसन्ती बाई का ऊपर।

भुलेश्वर का, कोई-कोई, सेठानी लोग का ऊपर—खाने कूँ तर माल देवे, चिटक के सोने कूँ, जवानी का मजा लेने कूँ मस्का-सरीखा जिसम, पीरू-सरीखी छाती।

अपन गरीब रामा लोग के माँ-बाप ये लोग।

नहीं तो सेठ लोग का वास्ते हमेरी जिन्दगी, हाथ ऊपर का कबूतर। चुग्गा खिला-खिला कूँ गट्टर-का-गट्टर में च रहने देवे।

कबूतर में कबूतर, बोले तो,

अपना भुलेश्वर के!

एक जागा ऊपर एक लाख से ज्यास्ती।

कबूतरखाना येच !
कबूतर में कबूतर, बोले तो, अपन गरीब का औलाद ।
हमेरे लोग का वास्ते आक्खा मुंबई कबूतर खाना ······
कबूतर खाना का तुक, बोले, देखो, आया ये कैसा जमाना !
जमाना, म्हणजे, जिन्दगी का जाने-जिगर !
कुरबान जाऊँ !
जोबना को दिन मेरो······
उक्···!
उक्···!!
उक्···!!!

तीस

अपन अभी पिल-हाउस का नाका-ऊपर पड़ेला है।

पिल-हाउस—गोलपीठा—कमाठीपुरा—

मुंबई शहर का जिसम ऊपर का कोढ़।

सरकार का जिसम ऊपर का कोढ़।

सरकार, बोले तो, मुंबई के सेठ लोग का वास्ते—

सैंया भए कोतवाल !—

हम गरीब लोग का मजबूर माँ-बहन लोग इधर, रोटी का वास्ते, जिसम का बोटी-बोटी नुचवाने के। सरकार का राज, बोले तो, राम-राज ! राम-राज ! साहिब, राम-राज !

ऐसा राम-राज कदी कोई देखा नहीं होईगा !

सीता माई का बेटी-बहन लोग खिड़की ऊपर बैठकूं जिसम का सौदा करने के। कुरबान जाऊँ, इस राम-राज ऊपर ! रावण-राज

का कुंभकरण सहा[1] महीना बाद एक दिवस को उठता होता, इस राम-राज के कुंभकरण चौबीस कलाक[2] जागते रहते !......

गरीब लोग का हड्डी-पसली चबाते रहते।

कुरबान जाऊँ—!

येच आश्चर्याची गोस्ट!

रावण-राज में माँ-बहन लोग राण का धंधा नहीं करते होते। इस राम-राज को कोई क्या बोलिंगा ? येच राम-राज है, तो इस युग का राम को अपन क्या बोले ?

सलाम—सलाम—सलाम......

येच पिल-हाउस ऊपर हम एक पिक्चर देखा होता। गया अठ-वाडियाया[3]। पिक्चर का नाम होता—हा-हा-ही-हू !

अपन जब कभी भी पिक्चर देखता है,

विट्ठल भाऊ का याद आता है।

येच पिलहाउस ऊपर पहले वो रामभरोसे में, पीछूँ ताज सिनेमा में नौकरी करता होता। उसका जमाने में अपन दर-अठवाडिया मुफ्त में पिक्चर देखता होता। ज्यास्ती करके, विट्ठल भाऊ हमेरे को इंग्लिश पिक्चर दिखाता होता।

बोलता होता—"गणपत भाऊ, पिक्चर देखने के, तो बस इंग्लिश पिक्चरच देखने के। ये लोग की सरीखी चूमा-चाटी हिन्दुस्तानी लोग सिखेले नहीं।"

पण, ज्यास्ती करके वो अपना वस्ताद लंगड़दीन उस्मान के साथ रहता, बातचीत करता होता। वस्ताद उस्मान भी एक च

---

१. छः महीने। २. घंटे। ३. गत सप्ताह ही।

जासूस। एक च रंगीला मुसाफिर।

विट्ठल भाई का जिन्दगी,
विट्ठल भाई का हिस्टरी,
हमेरे लिए हाथ-ऊपर का चोपड़ी।
हिस्टरी में हिस्टरी, बोले तो, विट्ठल भाऊ की !
रामन्ना भाऊ की !
दोनों लोग गरीब। कबूतर का माफिक।
उनके लिए, आक्खी मुंबई कबूतरखाना-सरीखी।
सबूर करो, साहिब,
अपन दोनों का हिस्टरी बोलेगा।

हिस्टरी बोलने का टैम येच, जभी देसाई सेठ वसुन्धरा बाई का हाथ पकड़ रहा होइंगा, लालजी सेठ रहमानी-गुर्बानी पठानी का। कासम भाई का माफिक बोले तो,

येच आलम जवानी का।

इसी बखत का वास्ते फिलमिस्तान वाले 'जवानी की रेल चली जाए, रे !' गाणी बणाएले। फिलमिस्तान का तुक, बोले तो, कब्रिस्तान !

हलकट लोग 'नागिन', 'शहनाई', 'सरगम', 'खिड़की', सरीखा जालिम पिक्चर बनाकूँ लोग-बाग का सुख-चैन, मान-मर्यादा, नेक-नियती कब्रिस्तान में पहुँचाने के।

कब्रिस्तान में पहुँच के आदमी शान्ति का साथ सोने को। पण, 'फिलमिस्तान' हिन्दुस्तान का वास्ते कब्रिस्तान से भी खतरनाक !

'फिलमिस्तान' वाले गरीब लोग की जिन्दगी को कब्रिस्तान में ले जाकूँ च छोड़िंगा—ऐसा हमेरे को लगता है।

मुंबई के सेठ लोग गरीब की जिन्दगी को गट्टर-का-गट्टर में रहने देने के वास्ते च 'फिलमिस्तान'-सरीखा कब्रिस्तान बनाते। गांधी-जवाहर के देश में ऐसा-ऐसा हलकट फिलम कम्पनी, बोले तो, सरकार का मुँह पर कालिख-सरीखा।

अभी अपन को ज्यादा टैम नहीं।
अभी विट्ठल भाऊ की हिस्टरी,
रामन्ना भाऊ की हिस्टरी बोलिंगा !
पीछूं सुब्बू-सुब्बू भगवान् का नाम !
भगवान् का नाम, बोले तो, पांडुरंग-विट्ठल !
अरे, विट्ठल तो आला, आला—
मला भेटायला !
विट्ठल तो आला, आला—
विट्ठल तो आला,
विट्ठल तो—
उक्……

इकतीस

वोच बोलता—

जो आंखी से देखा, कानों से सुना—

वोच हिस्टरी अपन आप लोग को बोल दिया। हस्ती का दांत का माफक जिन्दगी अपन को पसंदच नहीं। हस्ती का दांत का माफिक, बोले तो, पोल-पट्टी वाली जिन्दगी !

भारती व्यास का माफिक !

करसन सेठ का माफिक !

पारसी सेठ का माफिक !……

विट्ठल भाऊ, रामन्ना भाऊ और हमेरे माफिक हज़ारों लोग येच मुंबई में कबूतर का माफिक जिन्दगी का दिवस पूरा करने को। येच वास्ते अपन आपखी मुंबई को कबूतरखाना च बोलता।

अभी अपना वादा पूरा।

सुबू होने का टैम।

गायकवाड़ हौलदार का आने का टैम……

अभी हम कुछ और हिस्टरी बोलिंगा, तो दारू पियेला बोलके वो फाकलण्ड रोड का लॉक-अप-ऊपर ले जाईंगा। वो लॉक-अप में खटमल-मच्छर, बोले तो, मुंबई का सेठ-सेठानी का माफिक—

खून को पानी बना कूँ रख देवे !

पानी का तुक, बोले तो, जवानी।

येच वास्ते, लावनी—

जवानी की रेल चली जाए, रे !

अभी सुबू-सुबू ऐसा हलकट लावनी गाईंगा, तो आप लोग अपन को बेशरम बोलिंगा।

बेशरम का तुक बोले तो,

ईमान-धरम !

ईमान-धरम, बोले तो,

येच आत्मा-परमात्मा !……

अच्छा अभी सुबू होने का टैम…अपन चलिंगा। रामा लोग का जिन्दगी, येच सुबू के टैम से शुरू…जाकूँ सेठ का घर का, बिस्तर का सफाई !…भाँडी-बरतन पानी से भरने का। पीछूँ, जूठा भाँडी घसना, येच किस्म-किस्म का काम-धंधा—मारुति देवा[1] की पूँछ का माफिक—कल रात का उसी टाइम तक, जिस टाइम अपन दारू पिया।

दारू पीने वाले की तो—'—' का……

---

१. हनुमान।

दारू, बोले तो, येच गरीब लोग की जिन्दगी की बरबादी वास्ते बंदोबस्त···जो कुछ भी कमाई करने को, येच दारू की बाटल पेट में भर कूँ, जेब-खीसा खाली करने कूँ !···खीसा खाली···भपक भारी···दारू, बोले तो, हम गरीब लोग का वास्ते जान मारू···

कईसी जान-मारू ?···

उक्······

निम्मी-नरगिस-सुरैया का माफिक······

सेठानी वसुन्धरा बेन, वसन्ती बेन का माफ़िक······

उक्······

फिलमिस्तानी सिनेमा का माफिक······

नटी शकुन्तला बाई का माफिक······

उक्······

और कईसी···?

सरकार का मा······

अरे, कईसा हलकट और पतला पेशाब का माफिक बात बोल रिया है अपन भी···?···सरकार बम्बई में दारूबंदी का फरमान जारी किएली···दारू का बाटली का पाटिया आउट किएली···बोले तो, रीब लोग की बरबाद जिन्दगानी कूँ सही लैन पर लाने कूँ बंदो-बस्त कर रयेली······

उक्···बच्च ! सँभल जा······

येच दारू गणपत रामा की जिन्दगानी कूँ वरली के गटर में पहुँचायेली···कईसी ?···बांदरा के बुन्दू खाँ मियाँ के डूकरों[२] का

---

२. सुअर।

फिक…!…सरकार…?

हमेरी आई-बाप……

बंद करवाकूँ रख देवे इस पेशा…उक्…नहीं रे, दादा लोग !…
हर का दरिया को बंद करवा देवे, तो गणपत रामा लोग का
स्वाद डूकर की माफिक सड़ेली जिन्दगानी से पारले का पिपरमेन्ट
का माफिक खुशबू मार देवे……

अभी आप लोग च बोलो, साहिव ?…अभी अपन आप लोग से वायदा किएला, कि रामन्ना भाऊ, विट्ठल भाऊ का हिस्टरी आप लोग को सुनाएगा…किया, कि नहीं ?…और आप लोग जानना होईगा, कि गणपत रामा अपना गर्दन कटा देईगा, पण वायदा-खिलाफी को करकूँ, आप लोग का गू…नहीं, साहिव, अभी सुब्ब होने का टैम…भगवान् पांडुरंग बिट्ठला और गंगा-जमुना मैया का नाम लेने का टैम…ऐसा जोरदार पुण्यात्मा येच परमात्मा टैम में अपन हलकट-सड़ेला लफ्जों को अपना दो इंची जवान से निकालेगा नहीं… येच हमेरी कसम ! येच हमेरा वायदा !……

सुब्ब का टैम…वोले तो, गणपत रामा के लिए, सेठ करसनदास माणकदास का जूठा भाँडी घसने के वास्ते तैयार रहने का टैम और सेठानी वसुन्धरा बेन का वास्ते……

नहीं, साहिव, सुब्ब का टैम, वोले तो, आई-वहन का वास्ते दोनों हाथ जोड़के दुआ करने का टैम…वसुन्धरा बेन, वसन्ती वेन—येच दोनों हमेरे वास्ते, आप लोग का वास्ते, आक्खा हिन्दुस्तान का वास्ते आई-वहन, येच मदर-सिस्टर का माफिक…आई-वहन, मदर-सिस्टर, बोले तो, सवका एक-सरीखा ! हमेरी मदर-सिस्टर, वोले तो, आप सव लोग की…हमेरा फादर याने येच वाप-पिताजी, वोले तो, आप

सब लोग का फादर···!······

वो, देखो, साहिब !···सड़क ऊपर का बत्ती गुल होने को···याने सुब्ह होने को, बोले तो, अपन अभी सेठ का भाँडी घसने कूँ, पानी भरने कूँ, झाड़ू लगाने कूँ दौड़ते का···बोले तो, गणपत रामा को अपने जिगरी दोस्त विट्ठल भाऊ, रामन्ना भाऊ का आख़िरी हिस्टरी बोलने को गुंजायश नहीं, टैम नहीं !···

अच्छा, अपन अभी आप लोगों को सुब्ह-सुब्ह का सलाम मारिंगा···सलाम सा···

मगर, ठहरो, साहिब लोग !···आप लोग अभी हमेरे ऊपर मेहरबानी करकूँ जरा सबूर करो···आप लोग को सलाम पीछुँ मारिंगा···

पहला सलाम अपन उस नेकबख्त सरकार शहंशाह को मारिंगा, रामराज़ा जवाहरलाल परमात्मा को, रायबहादुर महात्मा मोरारजी देसाई साहिब को मारिंगा, जिनका मिहरबानी और जबर्दस्त कोशिश से येच डैमिश बम्बई शहर में दारूबन्दी का शहंशाही कानून लागू होने को···

दारूबन्दी कामयाब, बोले तो, गणपत रामा का बरबाद जिंदगी आबाद !···गरीब लोग का नाशाद जिंदगी कामयाब !···येच वास्ते, सरकार, बोले तो, हमेरी आई-बाप, बोले तो, मदर-फादर !···

गणपत रामा, बोले तो, सेठ लोग का कबूतरखाना का एक पाँखी टूटेला कबूतर···और सरकार शहंशाह का, बोले तो, एक गरीब, गुनेगार, डैमिश, सड़ियल-अड़ियल और गुमराह बच्चा !··· येच लावारिशी का नतीजा, बोले तो, दरेक किस्म के गुनाहों में, बदफेलियों-बदमाशियों में—गरीबी और बदनसीबी की वजेह से—

इने का कारण से इतना हलकट, इतना बदजुबान, इतना बदतमीज होने को, कि आक्खी रात दारू का गलीच नशा से मदहोश होकर, आप सब आई-बाप लोग का नींद हराम करने को···

माफी करना, साहिब !···

आज से कभी अपन दारू का बाटली का खुशबू लेना भी पेशाब पीना का माफिक···

मगर, साहिब, अपन अभी सुबू का टैम झूठी कसम नहीं खाईंगा !···माफी करना !···बोले तो, हमेरी लावारिश जिंदगानी में, पाँखी टूटेले कबूतर का माफिक जिन्दगानी में चारों तरफ से—आगे-पीछू से, ऊपर-नीचूं से—देखो, तो येच बेशुमार गमगीनी का, बरबादी-बदनशीबी का दरिया-समंदर !

······पीछू अपन गमगीनी का, बरबादी-बदनशीबी का दरिया-समंदर को पार करने का वास्ते दारू का बाटली को किश्ती का माफिक इस्तेमाल नहीं करिंगा, तो क्या अपनी '—' को '—'···

बोले तो, साफ बात, दारू पिएगा···

झूठी कसम नहीं खाएगा !···

भारती व्यास का माफिक हलकटपना करके हस्ती का दांत नहीं दिखाएगा···

बोले तो, दारू हमेरा बाप पिया, हम पिएगा और सेठानी वसुन्धराबेन, वसन्तीबेन···याने किसी भी डैमिश औरत से हमेरा पैदा होने वाला बेटा भी पिएगा···!

नहीं तो, हमेरे को हमेरी गंगा बहन दो, हमेरे को हमेरी आई दो, हमेरे को हमेरी सईदन दो···आप लोग, हमेरे आई-बाप, हमेरे को कबूतर से इन्सान का जिन्दगी दो हम गरीब लोगन पर रहम करो,

हमेरे माई-बाप !…आप लोग हमको इस गटर की जिन्दगी से ऊपर निकाल कूँ, गटर के कीड़े से इन्सान बनाओ—पीछूँ हम कभी भी एक लफ़्ज पण बदतमीजी का बोले, तो हमेरी जबान खींच लेना !…

आप लोग अपने लावारिश बेटे, इस गणपतरामा को कलेजे से लगाकूँ देखो, अपन दारू पीना पेशा…

सच्ची बात, बोले तो, बिना कसम की…

दारू का बाटली को हाथ लगाना भी पाप समझिगा !

येच हमेरा आप लोग को देने का वायदा !

येच हमेरी जिन्दगी का वसूल…

येच कबूतरखाने से निकलने की स्कीम…

अच्छा, साहिब लोग, आप लोग का बहुत कीमती टैम अपन ले लिया…अब चलिगा…

सलाम, साहिब !

राम-राम, साहिब !

राम-राम, से…

उफ़्…